"जाइति हयि बाबा, जाइति हयि।"

बाबा बरगद के चबूतरे पर जरा कमर सीधी करने लगा। खिलावन को आता हुआ देख, बदन तौलते हुए उठा। एक अँगड़ाई ली, फिर उसके हाथ से चिलम लेते हुए बोला—"तपस्या क्या होती है बे, जानता है कुछ?"

चिलम की ओर देखते हुए, खीसे निपोर कर, हाथ मलता हुआ खिलावन बोला—"हाँ बाबा, जानिति हयि।"

चिता से आग लेने के लिए बाबा बढ़ा। हड्डी के टुकड़े से अँगारे खींचे, चिलम पर फूँकते हुए, उसने पूछा—"क्यों बे, तपेसरी का लौंडा कब मरेगा?"

आग तापते हुए खिलावन बोला—"ज़मीन पर तौ लै लिहिन है वहिका। आज भिनसरहै आँखी उलटि दिहिस रहै। मुल परान-पापी कतूँ अटके आये। याकै याकु जवान-जहान लरिका—का बाबा, उजरिगा तपेसिरियौ बिचरऊ!"

चिलम के चमकते हुए अँगारों मे बाबा के मोटे-मोटे ओठ फड़कते दीखे।

"उजड़ने दे साले को। सुन बे, तेली की जात है। मैं उस के मुर्दे को सिद्ध करूँगा।"

"मुल तपेसरी.. !"

"चुप बे तपेसरी के बच्चे। तेरा मालिक है, होगा। देख बे, लहास फूँकने न पाय उसकी।"

कुछ दूर पर कब्र-बिज्जू ज़मीन में पोल कर रहा था। एक कुत्ते ने धीरे-से उसकी दुम दाँतों-तले ली। ज़मीन के अँदर से धीमी-सी गुर्राहट निकली।

आस-पास दो चार कुत्ते भूँक रहे थे। दूर पर सियारों का हंगामा था।

सनसनाती हुई हवा पत्तों को खड़खड़ा कर बह चली। चिता की गर्म राख के थपेड़ों ने खिलावन औ अघोरी को उठ जाने के लिए मजबूर किया।

"लौंडे का ब्याह भी तो हो चुका है न?"

"हाँ बाबा, याक पखवारा भा होई। अबही तौ हाथे क्यार मेंहदियौ ऊजरि आय। ई हैजा ससुर बिकट महामारी आय। आजुकाल्हि तौनु ई जानि लेओ, अकि पाटि दिहिस अहै मसान ससुर। मुल मोहना सार परी पाय गया रहै परी, साँचे बाबा।"

"आँख है तेरी, क्यों बे?"

"नाही बाबा, च्-च् राम राम। आँखी का.. !"

"उड़ता है बे उल्लू ..साले...अच्छा जा, फूँकने न देना उसे। परी तुझे दिलवा दूँगा।"

अघोरी अपनी कुटी में घुस गया।

हवा के झोंके से पत्ते फिर खड़ाखड़ा उठे।

दूर पर एक कुत्ता रोया—"हूः SSS इः !"

तीन-चार कुत्ते साथ मे सुर मिला उठे। नदी के उस पार सियारों का शोर आसमान उठाये था।

[२]

"का हाल अहै मोहन क्यार ?" दूकान का टट्टर हटाते हुए खिलावन ने पूछा।

"तपेसरी एक टॉग उठा कर चारपाई पर बैठ गया। चेहरा सूख गया था। आँखे लाल थी। चार दिन की दाढ़ी स्याह चेहरे पर सफेदी बनकर छाई हुई थी। दुपलिया टोपी उतार कर, सिर-के खसखसी बालों पर हाथ फेरता हुआ, तपेसरी सूखी हँसी हँसा। फिर धीरे-धीरे बोलना शुरू किया—"का हाल बताई तुम का। बस इहै समुझि लेओ, दस-दुइ मिनट माँ आवै चहति है—यौ आपन दुकान द्याखौ।"

आँखों की कोरों मे पानी भर आया।

"राम नाम सत्य है ..सत्य बोलो ऽ मुक्ति है...हरि का नाम..." एक बारात आई।

"क्या भाव दी ?"

"चौदह पसेरी" तपेसरी ने बग़ैर सिर ऊँचा किये ही जवाब दिया।

"अरे ठीक बोलो भई।"

"ठीक ही है लाला। ई मोल-तोल की जगह नहीं.. खिलावन, तौल तो दे भैया।"

तराजू पर बटखरे चढ़ने लगे।

तीन, चार, पाँच लाशें आईं। तपेसरी दोनों हाथों में मुँह छिपाये चारपाई पर पड़ा रहा।

खिलावन बोला—"न होय तौ घरै जाओ दादा।"

तपेसरी अपनी ख़याली-दुनिया से चौंका—"नाही हो, का धरा आय घर माँ ?" तपेसरी चुप हो गया। आँखों मे फिर पानी भर आया। वह बोला—"बहुरिया गुम्म-सुम्म बैठी आय, घूँघट माँ मूड़ी डारे। जौनी आँखिन ते वहि क्यार सुहाग-सुआँग निहारा ..काहाँ, बाजी पलटि गई हमार तौ !"

आँसू ढुलक कर कान के नीचे से बह गये।

नाव से एक अर्थी उतरी। एक तरफ के डंडे नाव वाले ने उठाये, दूसरी तरफ़ एक औरत ने। किसी तरह उन्हे सम्भाल कर किनारे पर लाई। साथ मे एक तीन चार बरस का बच्चा था।

काँपते हुए हाथों से आँचल का खूँट खोल कर औरत ने चार रुपये निकाले। नाव वाला उन्हे लेकर तपेसरी की दूकान पर आया।

लकड़ियाँ तुल गईं। खिलावन ने रुपये परखे। एक जाली रानी छाप था और तीन खोटे।

"रुपये दूसये लाओ हो।" नाव वाले के सामने उन्हे फेकते हुए खिलावन बोला।

ज़मीन से रुपये उठा कर उन्हे ग़ौर से हथेली पर उलट-पुलट कर देखते हुए उसने कहा—"काहे ?"

बगैर सिर उठाये ही वह बोला "खोटे हैं।"

"खोटे हैं, का...?" नाव वाला तपेसरी की तरफ देखने लगा।"

"अरे खोट आंय ना। कहि तौ दिया।" खिलावन ने जबाव दिया।

"चारिउ ?"

"हॉ-हाँ वे। जा, कह दिहा न। जान काहे को खा रहा है मेरी। खिलावन, उतार लकड़ी। ऐसनें परान हमार सूली पर ससुर, ऊपर तें टिर्र-टिर्र। आवति है बड़े नहिं के धन्ना सेठ बने मुर्दा जलावै।" तपेसरी कराहा।

नाव वाला मुँह लटकाये चला गया। सामने, मुर्दे के पास घूँघट में मुँह छिपाये औरत बैठी थी। लड़का कुरते को दाँतों से चबाते हुए, चुपचाप खड़ा, इधर-उधर देख रहा था।

नाव वाला पास आकर बोला—"ई न चलिहैं।"

स्त्री ने अपना घूँघट हटाया। सलोनी औरत—उम्र बीस बाईस से ज्यादा न होगी। बड़ी बड़ी आँखें लाल हो रही थीं। चुपचाप नाव वाले का मुँह ताकने लगी।

"कहति अहै खोट आंय।"

अर्थशून्य दृष्टि से वह चुपचाप उसे ताकती रही। फिर भरांये हुए गले से बोली—"हमरे पास तौ औरु न होई।"

नाव वाले के पास भी कोई जवाब नहीं था। वह चुपचाप लाश की तरफ देखने लगा।

औरत ने भी एक बार उस तरफ़ कुछ देर तक नज़र की, फिर घूँघट डाल दोनों घुटनों के बीच मे मुँह छिपा बैठ गई।

जलती हुई चिताओं को देखने में लड़का खोया हुआ था।

एक के बाद एक, तीन लाशें आईं। जब राम नाम सत्य की आवाज़ आती औरत घूँघट उठा कर देख लेती। चिता जलती, महापात्र के बँटवारे होते, मसान का कर चुकाया जाता, लोग चल देते।

औरत अपनी बेबसी से ऊब उठी। ऊब कर लाश की छाती पर घूँघट रख रोने लगी।

"दवा दरुऔ न भई तुम्हारी हाय मोरे रामा ऽऽ! अरे मोरे सिरताज हो ऽऽ। राम हम का करी ऽऽऽ......।"

लाश हिल जाती थी।

लड़के ने माँ को देखा, बाप की ढँकी लाश को देखा, नाव वाले की तरफ़ आँख उठाई। जब कुछ समझ में न आया तो वह भी फुक्का मार कर उठा। सामने एक चिता जली। चुप होकर एकटक वह उसे देखने लगा। फिर रोने लगा। दो कुत्ते लड़ते-लड़ते पास आ गये। लड़का भाग कर अपनी माँ के कन्धे से चिपट कर चुप हो गया।

दो-ढाई सौ आदमियों के जुलूस के साथ एक विमान आया। चन्दन का गट्ठर खुल गया।

अघोरी छोटा-सा डोल लिये झोपड़ी से बाहर निकला। पेड़ के नीचे नाव वाला चुपचाप बैठा था। खट-खट करता

हुआ अघोरी पास आया।

"क्या है रे, जलाता क्यों नही इसे ?"

उस की आवाज सुन स्त्री को सहारा-सा मिला। अपने पति की लाश पर हाथ रख वह और जोर से रो उठी। लड़के ने अघोरी बाबा की सूरत देखी, माँ को रोते देखा और फिर माँ से चिपट जोर जोर से रोने लगा।

"अच्छा-अच्छा, मरने दे···मौत आई थी जावे, एक डोल पानी तो खींच ला कुयें से।"

बाबा ने डोल आगे बढ़ा दिया। नाव वाला चुपचाप लेकर चला गया।

अघोरी लाश के सिरहाने बैठ गया। कफन उठा कर लाश का मुँह देखा। औरत सरक कर बैठ गई।

"तेली है···तेली ?"

घूँघट से एक आँख चमकी। औरत ने सुबुकते हुए धीरे-से कहा—"नहीं, लोध।"

पेशानी और आँखों के किनारे की रेखाये तन गई। दोनों घुटनों पर हाथ टेक कर अघोरी उठ खड़ा हुआ। उठते मे, गले मे पड़ी हुई हड्डियों की चार-पाँच मालायें, खड़-खड़ कर बज उठी। खिझलाहट भरे स्वर में अघोरी गरजा—"चुप रह ससरी। कमीनी संकर जी के पवित्र अस्थान में रो-रो कर विघन डालती है। खबरदार, सवेरे-सबेरे बचन खाली गया मेरा। कलजुग मे मरा साला लोधा। कमीनी रोती

है ऊपर से।"

लोध के मुर्दे की पत्नी सकपका कर रह गई। महापात्र तथा दो-चार और लोग तमाशा देखने के लिये आ गये।

नाव वाले से डोल झपट कर अघोरी बड़बड़ाता हुआ कुटी मे चला गया।

धीरे-धीरे खोटे रुपयों का किस्सा मालूम हुआ। विमान की लाश के लड़के ने सुना। उसने धरम किया। लोध की लाश चिता पर चढ़ी।

"करम कौन करेगा · यह लड़का है · · 'अच्छा, यही सही।'

लड़के के एक हाथ मे जलती हुई पुआल पकड़ा कर दूसरे हाथ को अपने हाथ मे लेकर, महापात्र चिता की सात परिक्रमा कराने लगा। लड़का घबरा कर रो उठा। माँ को पुकारने लगा। महापात्र जल्दी-जल्दी उसे चारों तरफ़ घुमा रहा था। औरत अलग खड़ी रो रही थी।

"अच्छा, लाओ-लाओ जल्दी करो। सवा रुपये पैकरमा के, आठ आने परेत-भोजन, बीस आने मेरी दच्छिना। जल्दी करो जल्दी।"

विमान पर ज़रीकिनार दुशाले का कफन था। मेहतर ने हाथ लपकाया। महापात्र का ध्यान उधर ही था। दाहिना हाथ औरत की तरफ फैला हुआ था। निगाह सामने थी। मेहतर को दुशाला लेते देख वह चीख उठा—"ठहर बे, ठहर बे, ओ डोम के बच्चे, वो मेरा हक है।"

डोम का बच्चा भी सीना तान कर अकड़ा "है हक्क तुम्हारा ? कभी तेरे पुरखों ने भी कफन लिया था ?"

"हाँ-हाँ, बड़ा कनूनिया बना है। खबरदार जो एक कदम भी आगे बढ़ाया। हक्क की बात कर।"

महापात्र औरत की ओर मुड़ा—"जल्दी निकाल जल्दी, मेरी दच्छिना ! टके का मुर्दा ससुर, मेरा बावन रुपये का दुसाला चला गया तेरे पीछे। अब जल्दी कर ना।"

आँचल की गाँठ खुल गई। महापात्र झपट कर चारों ले गया खरे भी और खोटे भी।

डोम आगे बढ़ा। महापात्र एक टिखटी का बाँस लेकर झपटा—"कपाल किरिया कर दूँगा साले तेरी। बाये हाथ से ढीला कर दे मेरा दुसाला, चुप्पे से।"

"आये बड़े धौंस जमाने वाले।"

"धौंस वाले क्या बे.. वो तो मेरा हक्क है...लँगोटी तेरी होती है...जा ले जा।"

"वो तो मेरी हुई। उस पर क्या बोलोगे ?"

"अबे तो कफन दे न मेरा। मारे बाँस भुरता कर दूँगा साले...लाला, तुम्हीं धरम की बात कहो...बोलो... कफन किसका है ?"

तपेसरी के घर से खबर आ गई थी। वह रोता हुआ जा रहा था। महापात्र ने उसकी बाँह पकड़ कर पूछा।

तपेसरी क्षुब्ध हो उठा। आँसू से भरी आँखे ही महा-

पात्र की ओर उठा कर रह गया।

महापात्र ने उसे देखा। पूछा—"क्या हुआ... क्या मोहन..."

तपेसरी हिचकियाँ लेकर रो उठा।

"राम-राम, राम-राम। महापात्र एक क्षण रुक कर बोला—"अच्छा, धरम की बात कहे जाओ, हक मेरा है न?"

तपेसरी ने नाक साफ करते हुए भर्राये गले से जवाब दिया—"हाँ भैया तेरा है।" फिर जल्दी से पिण्ड छुड़ा कर चला गया।

"ले वे ले, देख ले।"

"उनके कहने से होता क्या है?" मेहतर बोला—"हक मेरा है।"

"बड़ा हक वाला बना है।" बाज की तरह झपट्टा मार कर महापात्र ने मेहतर के हाथ से दुशाला छीन लिया।

इसी समय अघोरी बाहर निकला।

"देख लो बाबा, देख लो। तुम्ही धरम की बात कह दो। कफ्फन किस का होता है? ये महा बाह्मन का बच्चा साला, मेरा हक लिये जाता है। कफ्फन भी नही जुड़ेगा साले को, मेरा जी दुखा के, हाँऽ।" डोम मुँह और आँखे पोछने लगा।

"जी क्या दुखाया वे हक मेरा है। लाला तपेसरी भी कह गये न अभी।"

अघोरी ने महापात्र की ओर जरा देखा। फिर भंगी से बोला—ले जाने दे साले को। तपेसरी भी हरामी है। उसका तू उतार लेना बे। लाता होगा उठा के अभी। जा बे, मेरी चिलम में आग तो ले आ।"

महापात्र धीरे-धीरे बड़बड़ाता हुआ खिसक गया। मेहतर आग लेने चला।

अघोरी ने तन कर एक अँगडाई ली—"शिव-शम्भो... हर हर।"

"फिर खिलावन की ओर तिरछा मुड़ कर बोला—"खिलावन, तौल रखबे लकड़ी। समझा!"

लाल-लाल आँखे खिलावन की आँखों मे जा पड़ी। खिलावन सकपकाया। धीरे-से बोला—"हाँ बाबा।"

"हाँ बाबा नही बे, होगा बाबा। समझा?"

खिलावन चुप रहा।

मेहतर अँगारे ले आया। चिलम उलट कर बाबा ने गाँजा भरा। फिर अँगारे रख, दम लगाते हुए, ओंठ चबा कर भँगी से बोला—"उस तेली का लौंडा फुकने न पाये। समझा बे। दुसाला तुझे दिलवा दूँगा।"

"मुल बाबा, पचास के बीच मे ये होगा कैसे?"

"होगा बे, होगा। बाबा कहता है, होगा। भसम कर दूँगा सारे मसान को आज।"

चिलम उलटा कर बाबा तेजी से अपनी कुटिया मे

चला गया।

"खिलावन !" अन्दर जाकर बाबा ने आवाज़ लगाई।

खिलावन चला। उसे बाहर ही से आदेश मिला—"किसी मजूरे को भेज। सहर से सामान मँगाना है।"

खिलावन उल्टे पाँव टाल पर लौटा।

बाबा की कुटी से लौट कर मज़दूर ने खिलावन से कहा—"बाबा मसान जगहि है आज। पूँजा खातिर समान मँगाइन है। तनी आपन सैकिल तो देओ हमका।"

खिलावन ने चुपचाप साइकिल की ओर देख कर गर्दन हिला दी।

घण्टे-भर बाद मज़दूर साइकिल के पीछे गठरी बाँधे लौट आया। फ़िर हुक्म मिला। मज़दूर गया। गाँव से एक बकरा चुरा लाया।

नदी में दो गोते लगा कर अघोरी गीले बदन कुटी मे जमे हुए आसन पर आकर बैठ गया। पूजा आरम्भ की। बकरा बलिदान किया।

अँधकार धीरे-धीरे बढ़ रहा था।

खिलावन, मज़दूर, मेहतर, महापात्र, चुपचाप खड़े, 'राम-नाम-सत्य' की आवाज निरन्तर समीप आते सुन रहे थे।

लकड़ी की टाल के सामने ही मोहन की अर्थी को विश्राम मिला।

"देख ले बेटा, देख ले हाय, अब इस गद्दी को कौन

सम्हालेगा मेरे लाल ?"

तपेसरी मोहन की लाश से चिमट गया।

एक-सौ-आठ गोते लगने शुरू हुए। तपेसरी किसी के सम्हाले न सम्हलता था।

"नहाले मेरे लाल···तुझे तो पैराकी का बड़ा सौख था मेरे मिठुआ !"

तपेसरी एक-एक बात को याद कर फूट-फूट कर रो रहा था।

कफन उतरा। मेहतर और महापात्र लपके।

"अब मत बोलना। ये मेरा दाँव है। बाबा फैसला कर चुके है।"

महापात्र कफन घसीटते हुए बोला—"बड़े बाबा आये फैसला करने वाले। मेरा हक है।"

लपक कर दूसरा छोर मेहतर ने पकड़ लिया—"आज हक जताने आये है। दिल्लगी नही है। मै ले के ही छोड़ूँगा।"

"देखूँ साले, कैसे लेता है। हड्डी तोड़ के धर दूँगा तेरी, चाहे आज नहाना क्यों न पड़े !" महापात्र मेहतर पर झपटा।

तीन-चार लोग समझाने लगे।

"नही आज मै फैसला करके ही रहूँगा। साला मेरे हक मे दखल देता है, भंगी का बच्चा !"

"और तू साले महाबाह्मन का बच्चा।"

महापात्र गुथ गया—"साले गाली देता है ?"

आसमान पर काले बादल घिरने लगे थे। लोगों ने जल्दी मचाई।

'अच्छा, पहले करम तो करादो। पीछे फैसला कर देंगे। पानी आने वाला है।" एक ने महापात्र से कहा।

"करम कैसा जी' पहले इस साले का तो करम कर दूँ।"

दोनों तरफ से चटाचट और धपाधप तमाचे, घूँसे और गालियों के गोले चल रहे थे।

तपेसरी रोता हुआ बोला—"अरे मंसादीन महराज, छिमा करौ। दाग तौ लगै गया हमरे भैया। तुम्हरे पाँव छुइति है।"

"मानें क्या लाला···तुम्ही कहौ धरम की बात' उत्ती बेला तुम्ही ने तो न्याव किया था···हमारा हक है कि नहीं?"

मेहतर ने बात काटी—"हक्क कैसे ··लाला की तो उमिर गुज़र गई हियाँ··बताओ लाला कफ्फन किसका···देखो, ईमान की बात।"

"ईमान क्या ···उत्ती बेला कहा ही था।"

"मुल तब आपे मे थोड़े रहे। पूछो लाला से।"

खिलावन बीच-बचाव करने लगा। महापात्र तैश मे आकर बोला—"तुम चुप रहना खिलावन। मोहन के मुर्दे पर मेरा हक नहीं जमा तो मेरी जिन्दगी भर की जाती है। तपेसरी लाला रोज के तजरबेकार है। कह दे मोहन की लहास पे हाथ धर के, हक इसका है···फेक दूँ साले को। दो कौड़ी के दुसाले

की बिसात ही क्या है ?" मंसादीन महापात्र के मुँह पर 'हक़' का तेज चमक उठा।

"खिलावन, तुम्हीं कहौ ईमान की। बाबा ने क्या फैसला किया था उस दम ?" डोम का पक्ष कमज़ोर था।

बड़ी-बड़ी बूँदें पड़ने लगी थी। अँधेरा घनघोर छा रहा था। लोग घबरा रहे थे।

तपेसरी सम्हला, बोला—"अच्छा जो बाबा कहैं भाइ।"

तपेसरी चला। मेहतर आगे-आगे बढ़ा और लोग पीछे पीछे।

कुण्ड मे आग की लपटें उठ रही थी ख़ून के छींटे, पूजा का सामान, बकरे का कटा हुआ धड़—कुटी मे चारों तरफ बिखरा हुआ था। बकरे के सिर मे चर्बी भर कर दीप जलाया था। ख़ून से सना हुआ कलेजा एक ओर रक्खा था, पास में ही शराब की बोतल। बकरे के ख़ून से लथपथ अघोरी आसन मारे मंत्रोच्चार कर रहा था। उसकी आँखें बन्द थी। बीच बीच में उसका बदन फड़क उठता था।

बाहर, सब लोग मंत्र-मुग्ध, स्तब्ध !

सहसा बाबा ने आँखे खोलीं। सामने तपेसरी को एक वस्त्र में खड़ा देखा।

शराब की बोतल हाथ मे उठाई। बकरे के कलेजे पर धार पड़ने लगी—"ॐ क्रीं आगच्छ आगच्छ चामुण्डे क्रीं स्वाहा ऽऽऽ!"

तपेसरी की तरफ़ देख अघोरी क्रूरतापूर्वक ठहाका मार कर हँस पड़ा।

आकाश में बड़ी ज़ोर से बिजली कड़की। पानी तेज़ी से बरसने लगा। लोग मसान छोड़ कर भागे।

बाहर, हवा के साथ पानी की तीखी-बौछारें, सन्-सन् करती हुईं।

बाबा ने कुण्ड में कलेजे की आहुति दी। आग की लपक बढ़ी। एक बार और अघोरी की हँसी स्मशान के वातावरण में गूञ्ज उठी—"ह्-ह्-ह्।"

हवनकुण्ड की अग्नि-शिखा बाबा के तमतमाये हुए चेहरे के सामने खेल रही थी।

दो रोटियाँ

[चन्द्रकिरण सोनरेक्सा]

उमा ने सिर पर पहला लोटा ही डाला था कि बाहर से उसकी छोटी ननद श्यामा ने पुकारा—"भाभी, ओ भाभी, मुन्ने ने सब कुछ खराब कर दिया है। जल्दी आओ।"

"हरे भगवान!" थके और खिझे हुए स्वर में उमा के मुँह से निकला। फिर साबुन-लगे हाथों से ही नल की टोंटी बन्द कर उसने गुसलखाने में से कहा—"बीबी जी, मेरे सिर में साबुन लगा हुआ है। जरा तुम्हीं धुला दो।"

"यह अच्छी रही," श्यामा ने तीखे स्वर में उत्तर दिया—"न बाबा, खिलाना-पिलाना सब कर सकती हूँ, लेकिन यह गंदगी नहीं ढोई जाती मुझसे........!"

"तो रहने दो, मैं आकर ठीक कर लूँगी।" रुआसे स्वर मे उमा ने कहा और जल्दी-जल्दी लोटे डाल कर सिर का साबुन निकालने लगी। बाहर मुन्ना उसी प्रकार लथ-पथ चिल्ला रहा था—"हुआ...हुआ... !"

"अरी बहू, क्या कान मे तेल डाल कर सो गई है।" बाहर के द्वार से प्रवेश करते हुए सास ने गरज कर कहा—"वाह री, बालक रो-रो कर बेहाल हुआ जा रहा है और रानी जी अपने सिंगार मे मगन है। देख तो आकर, उसने गद्दी, दरी-बिछौना, सब कुछ खराब कर दिया है।"

फिर बिना रुके उन्होंने पुकार लगानी शुरू कर दी—'बहू, अरी ओ बहू।"

"जी मै गुसलखाने मे हूँ!" जल्दी-जल्दी भीगी देह को बिना पोंछे ही, धोती लपेटते हुए, गुसलखाने के भीतर से उमा ने उत्तर दिया।

"बेगम गुसल कर रही है।" श्यामा ने माँ की पुकार के उत्तर मे कहा—"हुक्म दे गई है कि मेरे आने से पहले लड़के को नहला-धुला कर काजल-तेल लगा कर लैस कर दो।"

"ओ हो!" सास ने चमक कर कहा—"कोई उसके बाप का नौकर बैठा है जो नहला-धुला देगा। अरी बहू, क्या

तेरा नहाना अभी तक नहीं निबटा ?"

"आयी अम्मा जी।" बिना जम्पर पहने, धोती से देह छिपाती, गुसलखाने से निकल कर उमा रसोई घर की ओर लपकी। आलू चढ़ा आई थी। उन्हें देखना ज़रूरी था।

"पहले इसे सम्भाल!" सास ने पोते की ओर इंगित करते हुए कहा।

उमा मुड़कर दालान मे आ गयी। रोते हुए बच्चे को उठा कर नल के नीचे ले गई। नल खोल कर उसे नहलाते हुए उसने पुकार कर कहा—"बीबी जी, ज़रा आलू देख लो। कही जल न जाएँ।"

श्यामा ने सुन तो लिया, पर बोल कानों पर उतार कर 'जासूस की डाली' पढ़ती रही। उमा मुन्ने को नहला कर, तौलिए से उसका बदन पोंछ, फ्राक पहना रही थी। तभी आलुओं के लगने की तीव्र गंध ने उसकी नाक मे प्रवेश कर बता दिया, तरकारी जल रही है। फ्राक गले मे पड़ी छोड़ कर वह रसोई की ओर दौड़ी। अंचल से पतीली उतार कर उसने दूध की कढ़ाई चूल्हे पर रखी। फिर आकर मुन्ने को फ्राक पहनाई। मुन्ने के गंदे कपड़ों को समेट कर उसने एक कोने मे रख दिया।

साढ़े आठ बज चुके थे। नौ बजे तक उसे भोजन तैयार करना था। कपड़ों का पोट धोने के लिए फुरसत के पूरे दो घण्टे चाहिएँ। अभी ऊपर के कमरे

और छत पर झाड़ू लगानी बाकी थी। आज उमा ज़रा देर से, याने चार के बजाय साढ़े चार बजे, उठी थी। इतनी देर से उठने का ही यह फल हुआ था।

"बीबी, बीबी!" बाहर से दो वर्ष की मुन्नी ने आकर माँ का आँचल खींचते हुए कहा—"दादा जी आये हैं। चिज्जी लाए है।"

"हट परे!" उसे एक झिड़की देकर, मुन्ना को गोद मे उठा कर, रसोई घर मे चली गई। मसाले के दो-एक डब्बे मुन्ना के आगे रख, उसे खेल में लगा, वह आटा सम्हालने लगी।

चूल्हे पर तवा रखा ही था कि बाहर से उसके छोटे देवर ने आकर कहा—"भाभी, पिता जी ने कहा है, उनका पेट आज कुछ गड़बड़ में है। वह रोटी नहीं खायेंगे। थोड़ा-सा दलिया बना देना।"

"अच्छा," कह कर उमा ने पहली रोटी तवे पर डाल दी। 'उनके' लिये कुछ फुलके सेंक कर तवा वह उतार देगी। फिर दलिया बना कर शेष आटा बाद मे सेंक लेगी। मन ही मन उसने तय किया।

"बीबी दूध···बड़ी भूख लगी है।" मुन्नी आकर सिर पर सवार हो गई।

"ठहर जा, देती हूँ," उमा ने चूल्हा फूँकते हुए कहा गीली लकड़ियों के कारण आग जल नहीं रही थी

धुएँ के मारे उसकी आँखे अन्धी हुई जा रही थीं।

"अभी दे, जल्दी...!" मुन्नी मचल कर रोने लगी। उमा का धैर्य जवाब दे गया। आटा लगे हाथों से एक थप्पड़ उसके गाल पर लगा कर बोली—"चुप चुड़ैल!"

मुन्नी ने एक तूफान वरपा कर दिया। आँगन मे मचल कर गिर पडी। धरती पर लोट कर उसने पुकार लगाई—"अम्मा...अम्मा...मुझे बीबी ने माला...!"

अम्मा अर्थात मुन्नी की दादी माला फेर रही थीं। पोती का रोना सुनकर वहीं से बैठी-बैठी चिल्लाई—"बाबा रे, यह माँ काहे को है, कसाइन है। जरा लड़की पास गई नहीं कि इसने पीट पाट कर उसका भरता बना दिया। ऐसा कौन हल मे जुत रही है कि घड़ी-भर बच्ची को दुलार-पुचकार भी नहीं सकती। दोनों समय दो रोटियाँ सेकनी पड़ती है। उसी मे बिचारी का सारा दिन खप जाता है।"

उमा जहर के घूँट की भाँति सारी बाते पी गयी। रात के चार बजे वह उठी थी। अब साढ़े नौ बजे है। तब से वह एक पाँव से नाच रही है। घर भर के बिस्तरे उठाना, झाड़ना, सब को लस्सी-पानी-शर्बत बना कर देना, बच्चों को नहलाना-धुलाना, रसोई तैयार करना। सबेरे से यह चक्की चल रही है। अभी ढेर के ढेर कपड़े धोने है। अचार का मसाला कूटना है। गरम कपड़े धूप मे सुखाने है। आटा खतम हो गया है। उस के लिये गेहूँ बिनने हैं। यह सब करना है। कभी बच्चे को गोद

में लेकर, कभी सुला कर, कभी पास बैठा कर । बीच-बीच में किसी को पान देना, पानी देना, सिर में तेल की मालिश करना, संध्या को फिर इतने बड़े परिवार के लिए भोजन बनाना, बिस्तरे बिछाना है···!

"मेरी कमीज़-पतलून तो ज़रा निकाल दो ।" रामेश्वर ने पुकार मचाई—"और देखो, गुसलखाने मे तेल-साबुन तौलिया भी रख देना ।"

तवे पर पड़ा फुलका जल्दी से सेंक कर उमा उठी। मुन्ना रोने लगा। लाचार उसे भी गोद में उठा कर तौलिया-साबुन रखने चली। जल्दी से साबुन-पानी रख वह ज़ीना चढ़ कर ऊपर गई। फिर बक्स में से कमीज़-पतलून निकाल पलंग पर रखा और रसोई में आकर पुनः रोटी सेंकने लगी । मुन्ना किसी भी तरह शांत न बैठता था। उमा ने हार कर ननद को पुकारा—"बीबी, ज़रा आकर इसे लेलो । रोटी नहीं सेंकने देता ।"

श्यामा भुनभुनाती हुई आकर उसे उठा ले गयी । जाते जाते बोली—'इससे तो काम कर ले सो अच्छा। एक नौकर इनके बच्चे को खिलाए, तब रानी जी दो रोटियाँ सेकेंगी ।"

"तो बीबी, दो फुलकियाँ तुम सेक दो । मैं इसे लिए लेती हूँ ।" उमा ने ज़रा चिढ़ कर कहा।

दो फुलकियों के लिए गुँधे हुए दो सेर आटे का परिमाण देख कर श्यामा ने मुँह बिचका कर उत्तर दिया—"न बाव

मैं किसी के किए-कराये की मालिक नहीं बनती। जब सभी तुम ने कर लिया तो दो रोटियाँ सेंक कर मैं अपना नाम क्यों करूँ।" और वह मुन्ना को उठा कर चली गई।

"कमीज़ के बटन नदारद हैं। पतलून मे बक्सुए नहीं हैं।" रामेश्वर ने ऊपर से आकर भुनभुनाते हुए कहा—"तुमसे इतना भी नहीं होता कि जब धोबी के यहाँ से कपड़े आएँ तभी उन्हें टाँक कर दुरुस्त कर रखो।"

उमा ने तवा चूल्हे से उतार कर नीचे रख दिया और कमीज़ लेकर भीतर चली गई। एक बटन टाँक कर दूसरे मे सूई लगाई ही थी कि बाहर से सास ने कहा—"हरे राम, चूल्हा ख़ाली जल रहा है और आप जाने कहाँ सो रही है।"

घबड़ाहट मे सूई उमा की उँगली मे चुभ गई। 'सी' करके उमा ने सूई खींच ली। दो बूँद रक्त धोती पर चू पड़ा। जैसे-तैसे बटन लगा कर, बक्सुए हाथ मे लेकर, वह बाहर आ गई। चारपाई पर सब कुछ रख कर वह फिर रोटी सेकने लगी।

सास कह रही थी—"जल्दी-जल्दी, सेक ले। मै गेहूँ फटक रही हूँ। बीन कर साफ़ करना है इन्हे।"

+ + +

पौने ग्यारह बजे रामेश्वर सिनेमा देख कर लौटा। उमा ने आकर द्वार खोले। फिर यह कहती ऊपर चली गई—"रसोईघर में जाली की आलमारी में दूध रखा है। वही कपड़े में लिपटे पान भी रखे है।"

रामेश्वर ने रसोई मे जाकर दूध निकाल कर पी लिया। फिर कुल्ला कर पान का बीड़ा मुख में रख ऊपर पहुँचा। कमरे मे आकर देखा, मुन्नी अपने खटोले पर और मुन्ना उमा की चारपाई पर सो रहा है। उमा अपने सामने रामेश्वर का बक्स खोले कुछ सी रही थी।

"इतनी रात तक भी तुम्हारा ताना-बाना खतम नहीं हुआ !" अपने पलंग पर बैठ कर रामेश्वर ने कहा—"यह क्या कर रही हो ?"

"जरा कमीजों मे बटन लगा रही हूँ", उमा ने एक फटे नीकर को सीते हुए धीरे से उत्तर दिया।

"इसके लिए क्या दिन मे समय नहीं मिलेगा। क्या करती रहती हो सारे दिन। पहले चौका-बर्तन का रोना रहता था। अब तो महरी भी लगा दी है।" रामेश्वर ने नाक-भौं चढ़ा कर पूछा।

उमा चुप रही।

"चलो रखो। इसे कल करना। अब सोओ।" अधिकार पूर्ण स्वर में रामेश्वर ने कहा।

उमा ने चुपके से सब समेट कर बक्स मे रख दिया। उसकी ऑखें नींद से झपी जा रही थी। हल्के पॉवों से वह अपनी चारपाई की ओर बढ़ी।

"अरे उधर कहाँ चलीं, यहॉ आओ !" रामेश्वर ने बुलाया।

— आ —

उमा के सिर पर फिर मुसीबत आयी है। अर्थात् निकट भविष्य मे ही वह किसी तीसरे प्राणी की माँ बनने वाली है। मुन्ना अभी सवा साल का है। अच्छी तरह पैरों भी नहीं चल पाता। मुन्नी भी मुश्किल से साढ़े तीन वर्ष की हुई है। तिस पर अब यह तीसरा प्राणी आ रहा है। उसने तो कभी इसकी चाहना नहीं की। वह तो पहला भार ही सम्हालने मे असमर्थ है। इसे वह कैसे पालेगी। फिर मुन्ना आजकल बीमार है। दिन भर उसे सास रखती है। स्वयं उसे तो दो रोटियों से ही फ़ुरसत नहीं मिलती। हाँ, रात का जागना उसके ज़िम्मे है। वह नही जागेगी तो कौन जागेगा? वह जागती है, दवा देती है, दूध पिलाती है और रामेश्वर की नीद न उचट जाए, इसलिए सारी रात मुन्ना को गोदी मे लेकर टहलाती भी है। बीमार बच्चा, तनिक-तनिक-सी बात पर रोने लगता है।

उमा की देह यह सब नही सह पाती। तीन महीने से उसे हल्की-हल्की खाँसी बनी हुई है। बीच मे दूसरे चौथे हरारत भी हो जाती है। आज मुन्ना की तबियत ज्यादा खराब थी। डाक्टर देखने आया था। देखकर जब बाहर आया तो उसने रामेश्वर से कहा—"मिस्टर वर्मा, तुम्हारी वाइफ़ तो बहुत 'वीक' है। डिलिवरी का टाइम करीब आ रहा है। पूरी खुराक और आराम मिलना चाहिए। हूपिंग कफ (काली खाँसी) हो रही है। सरदी के दिन हैं। ठंड से बचाइयेगा......।"

रामेश्वर चुपचाप खड़ा डाक्टर का 'सर्मन' सुनता रहा। वह कुछ बोला नहीं।

\+ + +

वह दिन भी आ गया, जिस की कल्पना और प्रतीक्षा दोनों ही उमा की देह के अणु-अणु मे पीर-भरी सिरहन भर देती थी, जिसका अनुभव यह पहले भी दो बार कर चुकी थी। वही प्रसव की काल-रात्रि फिर आ गयी। नीले पड़े ओंठों को भीच-भीच कर, दर्द की लहरे सहते-सहते, उमा ने बेबस घण्टे बिता दिए। प्रसव फिर भी न हुआ। उमा के प्राण आँखों मे आकर अटक गये। हाय राम, किन पापों का दंड वह भोग रही है यह..... !

"रामू !" सास ने ज़रा घबड़ाये स्वर मे कहा—"जा, लेडी डाक्टर को बुला ला। दाई कहती है कि मेरे बस का यह रोग नही है।"

फिर बड़बड़ा कर बोली—"आज कल तो सभी बाते निराली होती हैं। बालक भी तो 'कलजुगे' हो गये है। बिना लेडी डाक्टर के धरती पर आना ही नहीं चाहते। आजकल की लुगाइयाँ भी ऐसी हैं कि एक दिन के दर्दों मे ही ठंडी पड़ जाती है।"

लेडी डाक्टर आई। उमा को देख घबड़ा कर बोली—"ओ बाबा, इतना वीक !"

पूरे छः घंटे के बाद मूर्छिता उमा ने एक मृत-शिशु

को जन्म दिया।

+ + +

दस बारह दिन बाद उमा फिर उठने-बैठने योग्य हो गयी। खड़ी होने की शक्ति आते ही उसके सिर पर फिर दोनों समय की रोटियाँ पड़ गईं। अब एक समय मे जब वह चार फुलके खा सकती है तो दो जून चार रोटियाँ सेक लेना कोई बड़ी बात नहीं। फिर जब बालक ही नही रहा तो सवा महीने की 'छूत' क्यों रहती। वह तो बालक के आराम की खातिर है, नारी की सुविधा के लिए नही।

डगमग पाँवों से उमा फिर घर मे चक्कर काटने लगी। मुन्ना को गोद मे लिए-लिए रोटी-पानी, झाड़ू-बुहारी, सभी कुछ चलने लगा। जैसे-तैसे तीन महीने तक उसने अपनी ड्यूटी भुगताई। फिर एक दिन चुपके से—कुल चार दिन के तेज ज्वर में सदा के लिए उसने छुट्टी ले ली। उमा मर गयी।

— ३ —

"श्यामा ज़रा साबुन तो देना !" गुसलख़ाने से रामेश्वर ने पुकारा।

"मैं मुन्ना को लिए हूँ" श्यामा ने बहाना किया और बाहर चली गई।

"अम्मा, साबुन कहाँ है मेरा !" रामेश्वर फिर चिल्लाया।

"क्या जाने भैया कहाँ है। मै तो रोटी सेक रही हूँ। कैसे ढूँढ़ूँ ?"

"ज़रा उठ कर देख न दो।"

"न बाबा, मुझ से बार बार नही उठा जाता। गठिया के मारे जोड़-जोड़ दर्द करता है।" माँ ने भुनभुना कर कहा।

बिना साबुन ही रामेश्वर नहा कर उठ गया। बदन पोंछने को उसने तौलिया उठाया। फिर सूंघ कर उसे दूर फेंक दिया। जाने कब से नही धुला था। बू आ रही थी उसमें। गीले बदन कपड़े पहने वह बाहर आ गया।

"अम्मा!" उसने रसोई के द्वार पर खड़े होकर कहा—"तौलिया में बू आ रही है। कब से नही धोया?"

"ले, अभी चार ही दिन तो हुए हैं साबुन लगाये।"

"चार दिन. तोबा!" रामेश्वर ने कहा—"तौलिया तो रोज़ धुलना चाहिए!"

"भइया, यहाँ तो किसी को फुरसत है नही। तुम्ही इतना कर लिया करो।"

दाँत पीसता रामेश्वर ऊपर चला गया।

"श्यामा मेरे कपड़े क्या धोबी को नही दिए।" वह ऊपर से चिल्लाया—"बक्स में एक भी पतलून नही है।"

"मुझे नहीं पता। नीचे के तो सब डाल दिये थे।" "श्यामा ने भुनभुना कर कहा—"दिन-भर तो मुन्ना को लिए रहती हूँ।"

रामेश्वर ने पलंग के नीचे झाँक कर देखा। मैले कपड़ों का ढेर लगा था। एक एक खींच कर वह सब कपड़े

निकालने लगा।

"हरे भगवान...!" सहसा उसके मुख से निकला। उसका नया कोट चूहों ने कुतर दिया था। परन्तु क्रोध किस पर करे। दूध पीकर उसने गिलास पलंग के नीचे सरका दिया था। वह शायद लुढ़क गया। दूध के लोभ से चूहों ने कोट की दावत कर डाली।

धप् से पलंग पर बैठ कर वह बड़बड़ाने लगा—"मैं सारे दिन जान खपा कर रुपया कमाता हूँ। फिर भी कोई मेरी परवाह नही करता। समय पर दो रोटियाँ भी नही मिलतीं। घर मे और काम ही क्या है जो... !"

'टन' करके घड़ी ने साढ़े नव बजाया। लपक कर रामेश्वर शीशा-कंघा खोजने लगा। कंघा दो टुकड़ा हुआ टेबिल के नीचे पड़ा था।

वह बड़बड़ाता हुआ सीढ़ियाँ उतरा—"अम्मा, मेरा कंघा किसने तोड़ा ?'

"और कौन तोड़ेगा, मुन्नी से टूटा है।" माँ ने धुएँ के कारण आँखे मलते हुए कहा—"इस मरी स्यामो से इतना भी नही होता कि एक समय रोटी ही बना लिया करे। दोनों जून मै ही चूल्हे पर तपूँ !"

"मुन्नी, अरी मुन्नी, इधर तो आ चुड़ैल !" आँगन मे जाती हुई मुन्नी का **कान** पकड़ कर रामेश्वर ने दो थप्पड़ जमा दिये।

"अरी मेरी माँ••!" मुन्नी चीख मार कर रोने लगी।

रामेश्वर बिना रोटी खाये आफिस चला गया।

अम्मा कह रही थी—"न बाबा! इसके मिजाज कौन सहेगा। मै तो बरेलीवालों को लिख दूँगी। लड़की छोटी हो या बड़ी, हम तो गौना ले जायँगे। छोटी थी तो ब्याह क्यों किया था। कुछ नही करेगी तो दो रोटियाँ तो सेंक ही देगी।"

कितना झूठ

[विष्णु]

निशिकाँत की आँखें रह-रहकर सजल हो उठती और वह मुँह फेरकर सड़क की ओर देखने लगता, मानो अपने आँसुओं को पीने की चेष्टा कर रहा हो। सड़क पर सदा की तरह अनेक नर-नारी पैदल, ताँगे पर, कार पर, सायकिल या दूसरे यानों पर, इधर से उधर और उधर से इधर आ-जा रहे थे। उनमे अमीर-गरीब, स्वस्थ-अस्वस्थ, सुन्दर-असुन्दर, दाता-भिखारी, अच्छे और बुरे, सभी थे। कुछ चुपचाप चल रहे थे कुछ ऊँचे स्वर मे चिल्ला रहे थे। उनके स्वर की गूँज दूर दूर तक फैल रही थी। कुछ फ़ैशन की तितलियाँ—यौवन की प्रतिमाएँ, खोये जीवन की याद लिये कुछ वृद्धाये, कुछ अल्हड़ बालक और बालिकाये, रात के सिनेमा मे सुने हुए गीत को गाने की चेष्टा करते हुए कुछ मस्त युवक, कुछ युग के भार से दबे हुए सिनरसीदा लोग। सभी आते और लिप्त-अलिप्त

से, एक अदृश्य चक्र में घूमते-घुमाते, विलीन हो जाते।

यह सब देख कर निशिकांत हठात् सोच बैठता—आख़िर यह बात क्या है—यह सृष्टि क्यों बनी है—उस अव्यक्त अगोचर परमात्मा को क्यों यह ख़ब्त सवार हुआ—क्यों उसने मकड़ी की तरह यह ताना-बाना बुन डाला—फिर इस जाले मे कितना तेज आकर्षण—स्त्री और पुरुष एक-दूसरे की तरफ इस प्रकार खिँचते है जैसे कभी वे एक रहे हों और फिर किसी के क्रूर हाथों-द्वारा कभी अलग कर दिये गये हों और अब जैसे फिर एक होना चाहते हों—बिलकुल उस काल्पनिक अर्द्ध-नारीश्वर की तरह—लेकिन वे एक हो कहाँ पाते है—केवल एक क्षणिक, अपरिमेय, अद्भुत और आनंद-मय आवेग के बाद अलस-उदास और धीर-गम्भीर होकर अपने ही समान अपने अनेक स्वरूपों का निर्माण करने मे लग जाते है—स्वयं सृष्टा बन कर नियन्ता की बेवकूफी को दोहराने लगते है और इस कार्य मे उन्हे इतना आनन्द मिलता है कि मृत्यु के समान प्रसव-पीड़ा भी उनके प्राणों मे उन्माद पैदा कर देती है। उनका मिट्टी का घरौंदा जब उनके अपने स्वरूपों की किलकारियों से गूँजने लगता है तो आनन्द-विभोर होकर कह उठते हैं—यही तो स्वर्ग है। और कभी न समाप्त होने वाले इस सृष्टि-क्रम का एकमात्र कार्य है जीवन के एक-मात्र और अन्तिम सत्य को प्रमाणित करना—जीवन का वह सत्य है मृत्यु...।

निशिकांत हठात् चौंक उठा—"तो क्या सत्यभामा भी मर जायगी... बेशक मर जायगी...!"

वह फिर कातर हो उठा। जिन आँसुओं को पीने के लिए उसने इतना सोच डाला था, वे फिर दुगने वेग से उमड़ आये। उसने गरदन को जोर से झटका दिया और इस बार फिर अपनी आँखें उस विशाल बिल्डिङ्ग की ओर घुमा दी जिसके एक कमरे मे, उसकी पत्नी सत्यभामा को लेकर, मृत्यु और जीवन के बीच एक भयङ्कर संघर्ष छिड़ा हुआ था। उसने देखा, उस ब्रह्मलोक (मैटिरनिटी हास्पिटल) मे अन्दर ही अन्दर एक शुभ कोलाहल, एक मधुर वेदना, एक मीठा दर्द, जागता चला आ रहा है। सफेद बगुले जैसे कपड़ों मे कसी नर्सें, तेज़ी से खटखट करती डाक्टरनियाँ; स्ट्रेचर या इनवालिड चेयर थामे सहायक दाइयाँ और बार-बार दरवाज़े पर आकर पुकारती हुई मिसरानी—सभी एक नियम मे बँधे, सदा की तरह, मशीन के समान अपना काम करती चली जाती है।

तभी दाई ने आकर पुकारा—"मालती का घरवाला है!"

बेंच पर ऊँघता-सा एक व्यक्ति बोल उठा—"जी, मैं हूँ!"

"लड़का हुआ है!"

"लड़का ··!" नींद जैसे खुल गई—"दूध लाऊँ?"

"हाँ, इसी वक्त—और फल भी," उसने कहा और शीघ्रता से चली गई।

क्षण बीता। लान मे अनेक स्त्री-पुरुष आये और गये।

इतने मे दाई फिर बाहर आई—"करुणा !"

एक स्त्री दौड़ी—"जी ·!"

"लड़की !"

स्त्री के साथ एक अधेड़ सज्जन भी थे। सुनकर सन्न से रह गये। दूसरे क्षण बोले—"लड़का और लड़की, दो मे से एक ही तो होना था। जाओ, मैं दूध लाता हूँ।

निशिकांत रोज़ इसी तरह सुनता और देखता कि भागे हुए स्त्री पुरुष आते है और खिलौने की तरह अपना ही सा स्वरूप लेकर चले जाते है। रात ही कोई दो बजे एक स्त्री आई। बोली—"मेरे बच्चा होने वाला है।"

नर्स ने कहा—"बेड खाली नही है। और कही जाइये।"

"लेकिन ··।" स्त्री के पति ने घबरा कर कहा।

नर्स खिजी, मुस्कराई, स्त्री को लेकर अन्दर चली गई और कोई बीस मिनट बीते होंगे कि लौट कर आई—"जाइये, दूध ले आइये। आपको लड़का हुआ है।"

लेकिन साथ ही निशिकांत ने देखा कि एक युवक बहुत दुखी, संतप्त, अलग एक कोने मे ऐसे बैठा है जैसे कि अभी रो पड़ेगा। उसने पूछा—"क्या बात है ?"

वह चौंका-सा—"क्या बताऊँ कि क्या बात है।"

"आखिर ?"

"पाँच दिन से दर्द उठ रहे है। बच्चा नही होता।"

"आपकी पत्नी है ?"

"जो...!"

"और कौन है ?"

"कोई भी नही।"

उसने गम्भीर होने की चेष्टा की और ठीक इसी समय आवाज़ लगी—"रानी के साथ कौन आया है ?"

"मै हूँ," वह युवक शीघ्रता से आगे बढ़ा।

नर्स ने कहा—"बच्चा अटक गया है। आपरेशन होगा।"

निशिकांत ने देखा, उस युवक के पैर लड़खड़ाये और वह बेञ्च पर ऐसे लुढ़क गया जैसे दरख़्त से कोई टहनी टूट कर गिर पड़ी हो। नर्स फिर आई और एक पर्चा पकड़ाते हुए बोली—"घबराइये नही। सब ठीक हो जाएगा। जाकर दवा ले आइये।"

वह उठा और निशिकांत से बोला—(वाणी उसकी रुँध गई थी)—"सच कहता हूँ, इस बार रानी बच गई तो...!"

निशिकांत ने बीच मे टोक कर कहा—"जाइये, इंजेक्शन ले आइये। जो कुछ आप करेंगे, वह सब दुनिया जानती है।"

वह गया कि वहाँ एक तीखी करुणा भरी आवाज़ गूँज उठी—"माँ, तुम से बढ़ कर मेरा सहारा कौन है। तुम माँ हो, तुम जगत्माता हो, तुम...!"

एक अधेड़ पुजारी माथे पर त्रिपुण्ड लगाये, गले मे राम-नामी साफा डाले, करुणा से घिघियाता, नर्स के पैरों पर झुका जा रहा था—"मै लुट जाऊँगा, मेरी बाग-बाड़ी उजड़ जायगी,

मेरे छोटे बच्चे धूल में मिल जायँगे...।"

सब तरह की बातों की अभ्यस्त नर्स ने बीच में ही तेजी से कहा—"शोर मत मचाओ। इलाज हो रहा।"

फिर दूसरे ही क्षण धीमा पड़कर बोली—"उसे आज पहले से आराम है। सब्र करना चाहिए। सब कुछ ठीक होगा।"

"ठीक होगा, माँ...?"

हाँ-ना में जवाब दिये बिना नर्स फिर चली गई। तभी लान के पीछे वाले बँगले में बड़ी डाक्टरनी तेज़ी से स्टेथेस्कोप लिये निकली। निशिकांत दौड़कर उसके पास गया। डाक्टरनी ने देखा, रुकी और बोली—"क्या बात है?"

"सत्यभामा के...?"

"हाँ-हाँ, वह आज टिकी है। ख़तरा पूरा है परन्तु आशा है..."

"आपकी कृपा है, लेकिन मैं कहता था, आप पैसे की चिन्ता मत करना...।"

डाक्टरनी लापरवाही से बोली—'पैसा हम लोगों के लिये चिन्ता का विषय कभी नहीं रहा। आप...।"

कहती-कहती बड़ी तेजी से वह अन्दर चली गई।

पास खड़े एक सज्जन ने पूछा—"केस बहुत सीरियस है?"

"जी, दस दिन से न जीती है, न मरती है।"

"बच्चा हुआ था?"

"जी, बच्चा तो ठीक हो गया..."

"फिर···"

"फिर क्या जी, अपने कर्म का लेख। बच्चा होने के सात दिन बाद इतना रक्त बाहर निकल गया कि ब्लड प्रैशर जोरों पर आ गया। खुन के इंजेक्शन लगाने की बात चल रही है।"

"खून के इंजेक्शन!" साथी अचरज से बोले।

"जी हाँ," निशिकांत ने कहा और तेजी से उठ खड़ा हुआ। अन्दर से उसकी माँ आ रही थी। उसके चेहरे पर घबराहट थी और आँखों मे तरल निराशा।

"क्या बात है?" उसने शीघ्रता से अपने को सम्भाल कर माँ से पूछा।

माँ कुछ नही बोली, केवल हाथ हिला कर मानो कहा—"क्या पूछते हो, पूछने का विषय ही अब समाप्त होने वाला है।"

"फिर उठने लगी है?"

"भागती है। नर्सों ने बाँध दिया है और दूर कमरे में जहाँ कि···"

"··· ··"

"रह-रह कर कह उठती है—बच्चा···मेरा बच्चा कहाँ है?"

"मैंने कहा—बेटी, तेरा बच्चा घर पर है। लेकिन वह मानती नही। उठ-उठ कर भागती है।"

माँ रोने लगी। निशिकांत नीचे देखने लगा। उसका

हृदय बैठ गया। आँखें जलने लगीं। आँसू अन्दर ही अन्दर धुआँ बनकर घुट गये। माँ फिर आँसू पोंछते हुए बोली—"मैं घर जा रही हूँ। बच्चे के लिए किसी दूध पिलाने वाली को देखना है। दूध के बिना क्या वह बचने वाला...।"

लेकिन जैसे ही वह जाने को मुड़ी, निशिकांत का छोटा भाई तेज़ी से साइकिल पर आकर बोला—"जल्दी घर चलो माँ!"

माँ, चौंक कर बोली—"क्यों रे...?"

"चलो तो।"

"आख़िर...?"

वह बोल नहीं सका। रो पड़ा।

निशिकांत समझा और समझकर हँस पड़ा—"अरे रोता है, इतना बड़ा होकर। दुनिया मे मरना-जीना तो लगा ही रहता है...।"

लेकिन माँ बावली-सी बोली—"तू कहता क्या है?"

फिर पागलों की तरह घर की तरफ दौड़ी। सड़क पर मोटर सन्नाटे से निकल गई। भाई ने साइकिल सम्भाली और निशिकांत सदा की तरह, हाथ कमर के पीछे बाँधे, टहलने और सोचने लगा—"यह दुनिया, यह सृष्टि, जीवन से मृत्यु, मृत्यु से जीवन, यह कैसा निर्माण-चक्र। यह प्रेम, यह वासना, सब का वही एक अन्त...।"

उसका मस्तिष्क चकराने लगा। उसे याद आया, युद्ध-

भूमि के उस महान् दार्शनिक नित्शे ने एक स्थान पर लिखा है—"स्त्री एक पहेली है जिसका हल बच्चा है !"

इतने में कई नर्सें मुस्कराती हुई उसके पास से निकल गईं। एक ने निशिकांत को देखा और कहा—"आज सत्यभामा बेहतर है।"

"थैंक्स, सब आपकी मेहरबानी है।"

"लेकिन उसके बेबी का ख्याल रखियेगा।"

निशिकांत एकदम कॉपा। नर्स ने उसी तरह कहा—"जब तक आप धाय का इन्तज़ाम करें, तब तक अपनी भावज का दूध ही पिलाइये। सत्यभामा हर वक्त बच्चा-बच्चा कहती रहती है !"

"जी," निशिकांत ने कहा, "बच्चा बिलकुल ठीक है। धाय का प्रबन्ध कर लिया है।"

दूसरी नर्स बोली—"कभी यहाँ भी लाइये।"

"ज़रूर लायेंगे जी।"

वे चली गईं। निशिकांत की आँखे एक बार फिर आँसुओं से भर आईं। वह गुनगुनाया—"स्त्री एक पहेली है और बच्चा उसका हल ··!"

छोटी डाक्टरनी मुस्कराती हुई वहाँ आई। निशिकांत को देख कर ठिठकी और अँगरेज़ी मे बोली—"मि० निशिकांत, सत्यभामा आज बेहतर है।"

निशिकांत ने हाथ जोड़े और कृत-कृत्य होकर कहा—

"बहुत-बहुत धन्यवाद। वह आपके कारण जीवित है। आप कितनी मेहरबान है!"

डाक्टरनी ने सुना-अनसुना करते हुए कहा—"उसका बच्चा कैसा है?"

"बिलकुल ठीक है··?"

"यह ठीक है, लेकिन सत्यभामा बच्चे के लिये जरूरत से ज्यादा चिन्तित है।"

इधर-उधर की दो-चार बाते करके वह चली गई और फिर सन्नाटा छा गया। धूप मे भी तेजी आने लगी। निशिकांत उसी तरह सोचता हुआ टहलने लगा। परदेश से आई कोई स्त्री एक कोने में खड़ी थी। उसने भी निशिकान्त को देखा। पूछ बैठी—"क्यों भैया, बहू का क्या हाल है?"

"अभी तो चल ही रहा है।"

स्वर को संयत बना कर वह बोली—"मैं कहती हूँ, इतनी देर जो लगी है, इसी में भला है। यह तो मरने में ही देर नहीं लगा करती। लेकिन बच्चा तो ठीक है न...?"

"बिलकुल ठीक!" उसने एक दम कहा और फिर चुप हो गया।

दोपहर भी बीतने लगी। मिलने का समय भी आने लगा। फिर कोलाहल शुरू हो गया। नर-नारी फिर बाते करने लगे। इस बार बहुत से बच्चे भी तोतली वाणी मे अपने छोटे भाई-बहनों की चर्चा करने लगे। कुछ हँस रहे थे,

कुछ के चेहरों पर चिन्ता की गहरी रेखा थी। कोई लड़के की बात कहता, कोई लड़की की। कोई कोई मौत की चर्चा भी छेड़ देता। निशिकांत ने सब की बातें सुनी और अपनी सुनाई। कहा—"भाई साहब, दुनिया का चक्कर इसी तरह चलता है। लड़का-लड़की, ज़िन्दगी-मौत, सुख-दुख—ये सब अपनी-अपनी बारी से आया ही करते हैं।"

"जी," उसकी बात सुनकर एक बोल उठा—"आप ठीक कहते हैं।"

दूसरे ने कहा—"आप कहते तो ठीक है, परन्तु हमने तो कभी ज़िन्दगी मे सुख देखा नही.."

एक तीसरा व्यक्ति बीच मे ही बोल उठा—"तो फिर आपके लिए जीना बेकार है ..!"

बहस तेज़ी से चलती, लेकिन घण्टी बज उठी और भीड़ बड़ी तेज़ी से अन्दर की तरफ भागी। निशिकांत आज अकेला था। भाई अन्य रिश्तेदारों के साथ जमुना पार चला गया था। माँ आ नही सकती थी। वह अकेला ही चुपचाप सत्यभामा के कमरे की ओर चला गया। उसने देखा—चारों ओर हँसी-खुशी का कोलाहल गूँज उठा है।

केवल सवेरे वाले पुजारी ने व्यग्रता से गुमसुम पड़ी अपनी पत्नी को देखा और रो पड़ा—"सोना, मेरी सोना, तू बोल तो...!"

नर्स चिल्लाई—"ख़बरदार जो यहाँ रोये!"

दूसरी तरफ़ एक युवती ने घबराकर पति से कहा—"मैं जाऊँगी। यहाँ डर लगता है।"

दूसरी स्त्री ने पति से पूछा—"बच्चे को देखा है!"

"नही।"

"वह देखो, नम्बर चार के पालने मे है। बिलकुल तुम पर पड़ा है।"

"सच!" और फिर वे दोनों मुस्करा उठे।

तीसरी स्त्री अपना भावज से चुपचाप बाते करके लगी। चौथी स्त्री की माॅ आई थी। पूछने लगी—"डाक्टरनी क्या कहती है?"

"ठीक हो जाएगा।"

"कब तक?"

"दो-चार दिन लगेगे!"

पाॅचवीं युवती ने पति से शिकायत की—"तुम बड़े शैतान हो। मुझे किस मुसीबत मे फॅसा दिया!"

पति मुस्कराया—"दो चार महीने बीत जाने दो, तब पूछूॅगा।"

दोनों हॅस पड़े। लेकिन इन सब से बचकर दूर कमरे मे निशिकान्त अपनी पत्नी के सामने जाकर खड़ा हो गया था। सफेद चादर की तरह फूली हुई लाश के सामने सत्यभामा ने उसे ऑख उठाकर ऐसे देखा जैसे अबोध बालक अपने चारों तरफ़ देखता है। उसने शायद मुस्कराना चाहा, शायद

मुस्कराया भी—चेहरे पर एक अव्यक्त-सा भाव आकर चला गया।

फिर धीरे से बोली—"तुम ..?"

निशिकान्त का दिल टूट रहा था, पर उसने अपनी सारी कोमल शक्ति बटोर कर कहा—"अब तो तुम ठीक हो।"

वह बोली नही, बायें हाथ को उठाकर जोर से पटक दिया।

"नहीं-नहीं," निशिकान्त ने कहा—"ऐसे नहीं करते।"

सत्यभामा बोली—"बच्चा...।"

वह बोला—"हाँ, तुम्हारा बच्चा बिलकुल ठीक है।"

"झूठ !"

"नहीं-नही, वह घर पर है। उसे दूध पिलाने के लिये धाय रक्खी है।"

वह आँखें गड़ा कर देखने लगी, लेकिन उन आँखों मे क्या था, यह कोई नहीं बता सकता। निशिकान्त ने उसकी आँखों पर अपना हाथ धर दिया। कहा—"एक दिन उसे यहाँ लायेंगे।"

यह कहते ही उसने महसूस किया कि उसकी आँखों की पुतलियाँ जोर से घूमीं। कुछ गीला-गीला लगा। उसने हाथ उठा लिया। आँसू की एक बूँद उसके हाथ से चिपककर रह गई। उसने हठात अपने को सँभाला। बोला—"सत्यभामा।"

"जाओ...!"

"रस पीओगी ?"

"नहीं.. !"

"कैसी बातें करती हो, पी लो .."

वाणी जैसे कुछ खुली—"तुम अभी तक गये नही । जाओ, नहीं तो ये नर्सें तुम्हे जहर दे देंगी !"

निशिकान्त ने कुछ कहना चाहा, परन्तु वह बाहर चला गया। बाहर फिर वही कोलाहल, बच्चों की किलबिल, स्त्रियों का धारा-प्रवाह प्रेम, स्नेह और भयभरी चिंता, पुरुषों की गम्भीर मन्त्रणा। कभी नर्सों का खटखट करते आना, दवा पिला जाना, कभी इनवैलिड चेयर पर किसी स्त्री का दर्द से कराहते हुए जाना। यह सब देखता निशिकांत अन्दर के लान मे टहलता रहा कि वक्त खतम होने से पहले एक बार फिर पत्नी को देख जाय, लेकिन जैसे ही वह अन्दर गया, सत्यभामा ने अजीब घबराहट से भरकर कहा—"फिर आ गये ?"

निशिकांत बिना बोले सिर पर हाथ फेरने लगा।

"सब मर गये—नर्सों ने सबको मार डाला !"

"नहीं·· !"

"जाओ ·!"

"······"

"सब खत्म—बच्चा भी खत्म !"

"बच्चा बिलकुल ठीक है। तुम देख लेना।"

तभी नर्स ने कहा—"बहुत मत बोलिये, मि० निशिकांत !"

दो-चार शब्द सान्त्वना के कहकर वह बाहर चला गया। उसका दिल भर आया। उसने आसू पोंछ डाले। सब कोलाहल समाप्त हो गया था। केवल रात का चपरासी बरामदे मे टहल रहा था। उसने निशिकांत को देखा—"बाबू जी, अब ठीक है न ?"

"कुछ है तो..."

"बस बाबू जी, अब सब ठीक हो जाएगा। मैने इससे बढ़कर बुरे केस देखे है। एक लाला जी आये थे। उनकी लड़की सूजकर मास का पिण्ड बन गई थी..."

रोज़ की तरह फिर वह अपनी कहानी सुनाने लगा जिस मे घूम-फिरकर अपनी तारीफ़ करना उसका लक्ष्य रहता। कहता—"आदमी की पहचान किसी किसी को होती है। सच कहता हूँ, आप है जो आदमी की कदर करते है। कभी ख़ाली हाथ नही आते, हर वक्त दुआ माँगता हूँ कि खुदावन्द करीम इन बाबू जी का भला करना।"

पूछ बैठा—"बच्चा कैसा है ?"

"बिलकुल ठीक।"

"खुदा का शुक्र है। बहू जी भी बिलकुल ठीक होंगी।"

निशिकांत काँप उठा, न जाने क्यों। तभी बाहर की सड़क पर खोमचे वाले ने आवाज़ लगाई। नर्स ने खिड़की से झाँक कर कहा—"ओ शरीफ !"

"जी हुजूर !" चपरासी भागा।

"खोमचे वाले को ज़रा बुलाओ। उसके पास चाट है न ?"

लेकिन वह रसगुल्ले बेच रहा था। बड़ी बड़ी आँखों वाली नर्स ने कहा—"हम चाट माँगता है।"

शरीफ ने कहा—"खाइये, मिस साहेब, बड़ा मीठा है!"

"अच्छा तो ले आओ, लेकिन पैसे तुम देना। मेरे पास इस समय नहीं है।"

"पैसे!" शरीफ हँस पड़ा—"मेरे पास और पैसे!"

एक क्षण सन्नाटा छा गया। खोमचे वाले ने नर्स को देखा, नर्स ने शरीफ को और शरीफ ने बाबू निशिकांत को। निशिकांत का दिल टूटा पड़ा था। उसे इन सब से नफरत हो रही थी। खोमचे वाले ने फिर कहा—"जाऊँ हुजूर ?"

निशिकांत एकदम बोल उठा—"जाओ नहीं, पैसे मैं दूँगा।"

"नहीं-नहीं," नर्स ने शीघ्रता से कहा।

"कोई बात नहीं। अरे, मिस साहब को मीठे रसगुल्ले दो।"

नर्स तब मुस्कराते बोली—"तुम बड़े अच्छे हो। सत्यभामा आज बेहतर है। आपका बच्चा कैसा है ?"

निशिकांत ने कहा—"सब ठीक है।" फिर मुड़कर बोला—"लो शरीफ, तुम भी लो!"

"अजी नहीं बाबू जी," शरीफ़ ने न-न करते हाथ फैला दिये।

नर्स थैंक्स देकर मुस्कराती अन्दर चली गई। शरीफ वहीं खड़ा-खड़ा खाने लगा।

चारों ओर अच्छा-खासा धुँधलापन छाया था। निशिकांत के दिमाग़ में कल्पना का बवण्डर फिर उमड़ने लगा। सोचने लगा—"बच्चे को पत्थर से बाँधकर जमुना में डाल दिया होगा ..जल के जन्तु उसे खाने दौड़े होंगे...वह मेरा बेटा था...मेरा अंग...मेरा स्वरूप...मेरे और सत्यभामा के प्रेम का साकार प्रतीक!"

शरीफ बोल उठा—"अरे, आप नहीं खा रहे हैं, बाबू जी!"

निशिकांत चौंका—"मैं...!"

"हाँ, आप भी खाइये न?"

"मेरे पेट में ज़ोर का दर्द है, शरीफ, मैं नहीं खा सकता।"

कहकर निशिकांत वहाँ से हट गया। उसकी कल्पना कभी उसे अपने निष्पन्द, निष्प्राण, जमुना के तल में समाये बच्चे को देखने को विवश करती, जिसे खाने के लिये जीव-जन्तु दौड़ पड़े हैं, कभी मृत्यु-शय्या पर पड़ी सत्यभामा दिखाई पड़ती जो अपनी खाली आँखें खोले खोई-सी कुछ ढूँढने की व्यर्थ चेष्टा में लगी है और इन कल्पनाओं में डूबा वह चौंक पड़ता जैसे कोई पूछ रहा हो—"बच्चा कैसा है?"

तभी वह मुस्कराकर यंत्रवत् उत्तर देता—"बिलकुल ठीक है!"

सारे कम्पाउण्ड में निशिकान्त के अतिरिक्त अब और कोई नहीं रहा था। उसने गम्भीर होकर अपने आप से कहा—'सत्यभामा को बचाने के लिये मेरे अन्दर इतनी तीव्र लालसा क्यों...क्यों मैं उसे मरने नही देना चाहता...क्यों मैं...?"

और फिर अपने-आप इस 'क्यों' का सम्भावित उत्तर सोचकर वह बड़े जोर से हिल उठा—"नही-नही...!"

लेकिन उसकी वह नही भी 'क्यों' के सम्भावित उत्तर की सचाई से इनकार नहीं कर सकी।

आज का अभिनय

(मोहनसिंह सेंगर)

अधनंगे, अधभूखे और अधमरे कुरूप कंकालों को सम्बोधित कर जर्मनवर्गोमास्टर चिल्ला उठा—'समझ गए न; मै फिर दोहरा देना चाहता हूँ कि यह सारा हलका फौजीक्षेत्र घोषित किया जा चुका है। अगर अपना भला चाहते हो, तो एक घण्टे के अन्दर-अन्दर इसे खाली कर दो, वर्ना इसी के साथ जिन्दा दफना दिए जाओगे। समझे!'

और यह कहकर वर्गोमस्टर ने कठोर मुख-मुद्रा बना कर इस तरह अपनी बत्तीसी भीच ली, मानो यम के जबड़े अपना भक्ष्य पाकर जुड़ गए हों! फिर उसने एक खूनी दृष्टि, जिस मे से घृणा, क्रोध और क्षोभ के शोले से निकल रहे थे, उन

निरीह, निरस्त्र, निःसहाय कंकालों पर डाली। सब के सब ऐसे गुम-सुम खड़े थे, मानो मिट्टी-पत्थर के पुतले हों। उनकी आँखे इतनी नीचे झुकी जा रही थीं, जैसे पृथ्वी की परतों को भेदती हुई पाताल में धँसी जा रही हों। अधिकांश के चेहरों पर आँखों की जगह सिर्फ पुतलियों पर चढ़ी पलके ही नज़र आ रही थी।

सहसा अपनी झुकी हुई गर्दन धीरे-धीरे ऊपर उठाते हुए एक बुढ़िया ने, जिस के होठों और आँखों मे उमड़े आँसुओं मे मानों कँपकँपी की होड़ सी लग रही थी, डरते-डरते मुँह खोला—'पर हेर मास्टर, मैं कई दिनों से भूखी और बीमार हूँ। मेरे दोनों बच्चे मौत की घड़ियाँ गिन रहे है। भला एक घण्टे मे मै कहा और कैसे . '

बुढ़िया का वाक्य अभी पूरा भी न हो पाया था कि बर्गोमास्टर की बगल मे साँप की तरह कुण्डली मारे बैठा चाबुक निकला और सड़ाक से शब्द के साथ बुढ़िया के ललाट, नाक, बाएँ गाल, कन्धे और छाती के खुले हुए भाग पर एक नीली सी धारी खीचता हुआ फिर अपने-स्थान पर लौट आया। सब के कन्धे और झुकी हुई गर्दने इस तरह काँप गई, मानो कोई भूडोल या बिजली का कड़ाका हुआ हो। एक हल्की-सी चीख़ बुढ़िया के दुर्बल कण्ठ से निकली और वह जहाँ खड़ी थी, वही ढेर हो गई।

उस क्षीण आह पर एक बड़े पर्वत-खण्ड की तरह

चकनाचूर होते हुए बर्गोमास्टर का उच्च स्वर फिर गूँज उठा—'ख़बरदार, अगर किसी ने जबान भी हिलाई तो। मेरा हुक्म आख़िरी हुक्म है। जर्मनों के हुक्म कभी सुधार-शंकाओं के लिए नहीं होते। वे पूरा आज्ञा पालन चाहते हैं—१०० फी सदी आँखे मूँद कर और ज़बान दाँतों के बीच मे दबाकर। समझे।'

उपस्थित व्यक्ति बेत की तरह एक बार फिर काँप उठे। फिर दाहिना हाथ ऊपर उठाकर बर्गोमास्टर चिल्लाया—'हाइल हिटलर।'

काँपते हुए कुछ हाथ ऊपर उठे, कुछ आधे उठे तथा जो कुछ नही उठे, वे उठने-लायक रह ही नहीगए थे। धम्म-से बर्गोमास्टर पिछली सीट पर बैठ गया और धूल उड़ाती हुई मोटर वहाँ से चल पड़ी। एक साथ सब की आँखे मोटर के पीछे उड़ती हुई धूल की ओर उठी और दूसरे ही क्षण सबके चेहरों पर एक दबी हुई सी मुस्कराहट खेल गई।

गिरी हुई बुढ़िया अपने कपड़े झाड़ती हुई कराहकर उठी और एक क्रूर मुस्कान के साथ व्यंगपूर्वक बोली—'वाह रे आर्यो की बहादुरी। पता नही, ये शैतान कब तक हमारे सिर-आँखों मे इस तरह धूल झोंकते और हमे सताते रहेगे ? न जाने कब तक हमे ये जुल्म-ज्यादतियाँ सहनी होंगी ?'

'जब तक लाल-सेना नहीं आ जाती।'—पास खड़े एक ८ वर्षीय बालक ने सहज भाव से कहा और इस तरह खिल-खिला कर हँस पड़ा, मानो शान्त वातावरण मे कोई झुनझुना

बज उठा हो ! आश्चर्य और प्रसन्नता से सबके चेहरे खिल उठे और एक साथ सब की आँखे बच्चे की ओर फिरी । पर यह क्या, बच्चे के हाथ मे एक नई पॅचनली पिस्तौल देखकर सबके सब अवाक्-अचम्भित रह गए । उसकी भूरी आँखों मे सन्तोष और प्रसन्नता खौलते हुए पानी की तरह उछल रहे थे । फटे-मैले चिथड़ों से ढॅका उसका स्वस्थ गौर शरीर ऐसा दिखाई पड़ रहा था, मानों संगमरमर की कोई सुघड़ मूर्ति जहाॅ-तहाॅ मैली हो गई हो । पिस्तौल को वह अपने छोटे-छोटे हाथों मे उछाल-उछाल कर इस तरह खेल रहा था, मानो कोई खिलौना हो ।

सब को आश्चर्य से अपनी ओर घूरता देखकर बच्चे ने स्वाभाविक मुस्कराहट के साथ कहा—'तुम सब लोग क्या इस पर ताज्जुब कर रहे हो कि यह पिस्तौल मेरे पास कहाॅ से और कैसे आई ? भई वाह, क्या यह भी कोई अचरज की बात है ? जब बर्गोमास्टर खड़ा हुआ अपना हुक्म पढ़कर सुना रहा था, सब की तरह मै भी उसे ध्यान से सुन रहा था । सहसा मेरी नज़र उसके पीछे, सीट के कोने मे, पड़ी हुई इस पिस्तौल पर गई और धीरे-धीरे आगे बढ़कर मैने इसे चुपके से उठा लिया । खेद है कि यह ख़ाली मिली, नही तो बुढ़िया पर कोड़ा फटकारने के पहले ही बर्गोमास्टर का खात्मा हो जाता ।'

सब के सब बड़े ज़ोर से ठहाका मारकर हॅस पड़े और एक साथ कई लोग बच्चे को चूमने के लिए दौड़े । जर्मनों का

अधिकार होने के बाद रूज्हिन के बचे-खुचे लोग शायद आज पहली बार दिल खोलकर हँसे थे।

— २ —

'सात बरस की इस छोकरी ने तो नाक मे दम कर रखा है। कभी कहती है, सारा शहर जल रहा है। कभी कहती है, लाल-सेना आ गई। कभी कुछ कहती है, कभी कुछ। है तो सात बरस की ; पर बाते ऐसी करती है, जैसे सत्तर साल की दादी हो!'—कहते हुए ईगोर यारत्सेफ ने एक लम्बी जँभाई ली।

अपने भग्नावशेष घर की दीवार के साथ पीठ के सहारे बैठे-बैठे उसने न मालूम कितने दिन और राते बिता दी हैं। आसपास का मलवा हटाकर उसने अपने और अपनी एकमात्र बची सात-वर्षीया कन्या अन्या के बैठने-लेटने के लिए ठाँव बना लिया है। उसके भरे पूरे परिवार में यही दो प्राणी और उस सुन्दर-सुखद घरमे बस इतना ही स्थान उनके लिए बचा है।

'पापा, पापा, सुना तुमने ?'—कहती हुई अन्या दौड़कर आई और ईगोर की गोदमे बैठ गई। उसकी तेजीसे चलती हुई साँस से ईगोरने महसूस किया कि वह शायद काफी दूरसे दौड़ी आई है और इसीलिए हाँफ रही है।

अपने दोनों हाथ उसके चेहरे पर फेरते हुए ईगोरने कहा—'क्या सुना ? तुझे आज यह हो क्या रहा है री ? न रात-भर सोई, न कुछ खाया-पिया। यह क्या पागलपन सूझा है आज तुझे ?'

अपने सिर से ईगोर की ठोड़ी रगड़ते हुए ग्रून्या ने कहा—'पागल मैं नहीं, तुम हो गए हो। तुम बहरे तो हो नहीं, फिर सुनते क्यों नही ? आखिर मै अकेली ही तो नहीं सुन रही—सारा गॉव सुन कर प्रसन्नता से उछल-कूद रहा है।'

'अरे, पर बता भी तो सारा गॉव क्या सुन रहा है ?'

'लाल-सेना की तोपों का स्वर, उस के बमों का विस्फोट। देखते नही, उसके लड़ाकू हवाई-जहाज लुफ्टवाफे को टिड्डियों की तरह मार-मार कर भगा रहे है।'

'अच्छा, ज़रा चुप तो रह'—ग्रून्या के मुँह पर अपना हाथ रखते हुए ईगोर ने कहा—'मै भी तो सुनूँ कि आखिर कहाँ लाल सेना आ रही है।'

दोनों साँस रोककर चुपचाप बैठ गये। दो-चार मिनट तक कुछ भी सुनाई नही दिया। फिर सहसा एक ज़ोर का धड़ाका और उसके साथ ही गड़गड़ाहट का शब्द हुआ, मानों कोई घर गिरा हो या कोई लोहे का बड़ा युद्ध-यन्त्र फटा हो। ईगोर ने कसकर ग्रून्या को अपनी छाती से चिपटा लिया। वह कुछ कहने ही जा रहा था कि दूसरा विस्फोट हुआ, फिर तीसरा, फिर चौथा और फिर तो जैसे विस्फोटों की झड़ी ही लग गई। चारों ओर से धड़ाम्-धड़ाम्, धड़-ड़-ड़...धम्म-की आवाज़े आने लगीं। लाल-सेना के हवाई वेड़े की परिचित आवाज़ कई महीनों बाद सहसा आज फिर सुनाई पड़ने लगी। फिर तो मोटरों, लारियों, ट्रकों, टैंकों और मोटर-साइकिलों की

सम्मिलित ध्वनि से जैसे वातावरण प्रतिध्वनित हो उठा।

ईगोर ने अ्न्याको और भी कसकर अपनी छाती से चिपटा लिया और उसके ललाट, सिर और कपोलों पर अधीर-असंयत चुम्बनों की छाप लगाता हुआ प्रसन्नता से पागल हो चीख उठा—'अ्न्या, मेरी प्यारी अ्न्या, वे आ गए। हॉ, सचमुच आ गए। तू कितनी अच्छी बेटी है। तूने ठीक सुना था—ठीक ही सुना था।'

'पर मुझे छोड़ो भी। मुझे जाने दो। देखो, सब लोग दौड़-दौड़ कर उन के स्वागत के लिए हर्ष-ध्वनि करते हुए जा रहे है।'—पॉव पटकते हुए अ्न्याने कहा।

'तू अकेली जायगी, अ्न्या? मुझे अपने साथ नहीं ले चलोगी? पगली कही की। चल, मै भी तेरे साथ चलता हूॅ।' यह कह कर ईगोर यारत्सेफ उठा और अन्या के सिर पर हाथ रख कर उसके साथ-साथ चलने लगा।

क्रांति चिरंजीवी हो, लाल-सेना की जय हो तथा सोवियत संघ जिन्दाबाद के नारों से आकाश गूञ्ज उठा। न-जाने कहॉ से, आज फिर सबके हाथों मे, घरों के छज्जों और खिड़कियों से, लाल झण्डे फहरा रहे थे। उन अधभूखे, अधनंगे और अधमरे कंकालों मे सहसा आज फिर नये जीवन का जोश और नये यौवन का ज़ोर आ गया था। उनके दुर्बल कण्ठ आज हर्ष-ध्वनि से पृथ्वी और आकाश को हिलाए डाल रहे थे। रूज्निह-वासियों की सम्मिलित हर्ष-ध्वनि मे ईगोर और अ्न्या की

पृथक् आवाज़ तो नहीं सुनाई पड़ रही थी, पर ईगोर के गले की फूली हुई नसों और मून्या के बैठे हुए गले से यह सहज ही अनुमान किया जा सकता था कि वे दोनों कितने चिल्लाए है।

गाँव की सीमा पर पहुँच कर लाल-सेना के घुड़सवार घोड़ों से उतर पड़े और दौड़-दौड़कर रूज्हिन वासियों से गले मिले। इस अगाऊ-टुकड़ी मे अधिकांश लोग रूज्हिन के ही थे, जो आसानी से अपने चिरपरिचित रास्तों से रात के अँधेरे में भी इतनी सफलता-पूर्वक रूज्हिन पहुँच सके थे। कइयों को उनकी माताएँ मिली, कइयों को पत्नियाँ, बहने, पुत्र-पुत्रियाँ, कुटुम्ब-परिजन आदि। आज नात्सियों की बर्बरता से कराहने वाले रूज्हिन ने जैसे नया जन्म ग्रहण किया हो। दौड़-दौड़ कर सब एक-दूसरे का अभिवादन-अभिनन्दन कर रहे थे।

गाँव में पहुँचते ही लाल-सेना तीन भागों में बँट गई। एक हिस्सा शत्रुओं और उनके किराए के कुत्तों की तलाश में चारों ओर गश्त करने लगा। दूसरा हिस्सा भूखे-नंगे नागरिकों को रोटी-कपड़े बाँटने लगा और तीसरा नात्सी-पैशाचिकता के शिकार हुए लोगों की मरहम-पट्टी की व्यवस्था करने लगा। इसके ज़िम्मे जहाँ-तहाँ पड़ी सड़ रही लाशों और तार तथा बिजली के खम्भों पर लटकी लाशों को दफनाना भी था। लाशों के बुरी तरह सड़ जाने और माँसल भागों के पक्षियों द्वारा खा लिए जाने से यह पहचानना असम्भव था कि वे किसकी है।

—३—

एक मोटर आकर ईगोर के घर के सामने रुकी। अन्या द्वार के चौखटे के पास खड़ी थी। मोटर मे बैठे एक भद्र व्यक्ति ने मुस्कराकर उससे पूछा—'क्या ईगोर यारत्सेफ यहीं रहते है?'

अन्या ने स्वीकृति मे केवल अपना सिर हिला दिया और भागकर भीतर पहुँची। बोली—'पापा, तुम्हारा नाम क्या है? लो, मैं तो भूल ही गई।'

हाथ से टटोलकर अन्या को पकड़ने की चेष्टा करते हुए ईगोर ने कहा—'क्यों री, फिर तूने अपनी शरारत शुरू की न। देख, अब लाल-सेना आ पहुँची है। अगर ज्यादा शरारत की, तो ..हाँ . देख लेना फिर।'

'तो क्या करोगे, तवारिश? तवारिश ईगोर यारत्सेफ!'—कहते हुए आगन्तुक ने भीतर प्रवेश किया और ईगोर का दायाँ हाथ अपने हाथ मे लेकर जोर से झकझोरते हुए कहा—'मुझे पहचाना, तवारिश?'

ईगोर हक्का-बक्का रह गया। एक क्षण को मुँह फाड़े, भावहीन मुद्रा से, इस तरह आगन्तुक की ओर मुँह किए रहा, मानो अपनी दृष्टिहीन आँखों से उसे पहचानने की कोशिश कर रहा हो। दूसरे ही क्षण कुछ झिझकते हुए उसने कहा—'तुम जरासिमोव, लाल-सेना के सर्जन जरासिमोव तो नहीं हो? आवाज तो कुछ वैसी ही, परिचित और पहचानी-सी, मालूम देती है।'

'भई, खूब पहचाना तुम ने !'—हर्षोन्मत्त हो सर्जन जरासिमोव ने कहा—'लेकिन ज़रा यह तो बताओ कि तुम्हारा यह क्या हाल हो गया ? हम लोग तो तुम्हे अस्पताल मे छोड़ कर गए थे न।'

'हाँ, अपस्ताल में ही। उस के बाद जो-कुछ हुआ, वह लम्बी करुण-कहानी है। फिर कभी सुनाऊँगा। मेरी जेब मे अगर लाल-पुस्तिका न मिलती, तो जान भले ही चली जाती, पर आँखे शायद न जातीं।'

'तो क्या लाल-सेना के आदमी होने के कारण ही तुम्हारे साथ यह हृदयहीन व्यवहार किया गया ?'

'हाँ। जर्मन-अफसर हम पर लात-घूसों और कोड़ों की बौछार करते, अपशब्द कह-कहकर हमारे चेहरों पर थूकते, नंगा करके हमे बुरी तरह पीटते और दाँत पीस-पीसकर कहते जाते थे कि स्लाव-जाति को वे समूल नष्ट कर देंगे और लाल सेना का तो नाम भी बाकी न रहने देंगे। हमे हफ्तों भूखों मारा गया, जाड़े मे नंगा रखा गया और बग़ल मे रस्से डालकर रात-रात भर छतों से लटकाए रखा। कँटीले तारों के घेरे मे, खुली जगह, कीचड़ मे रगड़-रगड़ कर न-जाने कितने स्वस्थ-सबल साथी भूख और शीत से तड़प कर मर गए। वे सब बाते मत पूछो सर्जन, कलेजा मुँह को आ रहा है। ओफ़, वे दिन !'

'सब जगह से ऐसी ही, बल्कि इस से भी भयङ्कर और

रोमांचकारी बाते सुनता आ रहा हूँ, ईगोर। मै तो यही नहीं समझ पा रहा कि क्या ये लोग भी मनुष्य है। बचपन मे चंगेजखॉ, बाती, मामई आदि के रोमांचकर जुल्मों का वर्णन पढ़ा था, किन्तु इन के जुल्मों ने तो उन्हे भी फीका कर दिया है। पर हॉ भाई, यह तो बताओ, तुम्हारी ऑखे कैसे जाती रही?'

'कहा न, वे लाल-सेना का नाम तक मिटा देना चाहते थे। हम जितने आदमी पकड़े गए थे, उन्हे उन्होंने घायल होने के बावजूद अस्पताल से न केवल निकाल ही दिया, बल्कि खाइयॉ खोदने और सड़कों का मलवा साफ करने को भी मजबूर किया। जिन घायलों ने भूख-प्यास सहकर सारे दिन श्रम करने मे असमर्थता दिखाई, उन्हे पहले बर्गोमास्टर के कोड़ों से और बाद मे गोलियों से मारा गया। हम मे से कुछ से न केवल मार-पीट कर ही लाल-सेना के भेद पूछे गए, बल्कि लाल लोहे की शलाखों से शरीर के कई अंग—यहॉ तक कि कइयों के गुप्तांग भी—दागे गए, कइयों की ऑखें निकाल ली गई; हाथ, पॉव, नाक, कान तो न-जाने कितनों के काट लिए गए। पिट कर वेहोश हो गिरने वालों के पेट चीर डाले गए। कई वेहोश हुओं को टैकों और फौजी-ट्रकों से रौद डाला गया। मेरा वायॉ कान आप को नजर आता है? मेरे हाथों की ॲगुलियॉ? और मेरा सीना भी तो जरा देखिए।'

यह कहकर ईगोर ने सीने पर से अपनी जीर्णशीर्ण कमीज

को हटा दिया।

सर्जन जरासिमोव की आँखें ईगोर की बाईं कनपटी की ओर गईं। उन्होंने देखा, बायाँ कान नदारद है! उस की जगह है सिर्फ कान का छिद्र। उस के हाथों की अँगुलियाँ भी इस तरह तिरछी कटी हुई हैं, मानों कोई गँड़ासा कच्ची बालोंको एक ही बार मे साफ कर गया हो। उसके सीने पर पहुँच कर तो सर्जन की आँखे बरबस छलछला उठी। गरम लोहे के दाग़ पीप से भर कर पकते-फैलते जा रहे थे। कुछ खड्डा बना कर जिन्दा चमड़ी मे ही सूखने लगे थे। सर्जन ने जेब से रूमाल निकाल कर अपनी आँखें पोंछी। आर्द्र-कण्ठ से कहा—'ईगोर, मेरे साथ अस्पताल चलो। अब और देर न करो।'

सर्जन के कन्धे का सहारा लेकर ईगोर यारत्सेफ उठा और पुकारा—'ग्रून्या, इधर आ। चल, तेरे भी कान कटवाता हूँ।'

बिना हाथों की ग्रून्या, बिना कुछ कहे-सुने, मुस्कराती हुई इस तरह आगे बढ़ आई, मानो कोई बिना पहिए की गाड़ी (खिलौना) लुढ़क आई हो। सर्जन ने एक जिज्ञासा-भरी दृष्टि उस पर डाली और उसके सिर पर हाथ फेरते हुए उस तथा ईगोर को लेकर मोटर की ओर बढ़ गए।

तीनों को लेकर जब मोटर अस्पताल की ओर चल पड़ी, तो सर्जन ने पूछा—'तवारिश ईगोर, तुमने सब-कुछ बताया, पर यह तो बताया ही नही कि ग्रून्या के हाथ कैसे काटे गए?'

'ओह, वह तो मैं भूल ही गया। जर्मन गुण्डे मेरे घर में

घुस कर अन्या की माँ के साथ बलात्कार कर रहे थे और वह बेचारी तड़प-कराहकर उनके फौलादी पंजे से छुटकारा पाने की विफल कोशिश कर रही थी, अन्या ने एक आततायी जर्मन सैनिक का मुँह नोच लिया। इस पर एकने उठा कर अन्या को जमीन पर दे मारा। दूसरा उसे गोली मारने जा ही रहा था कि एक सैनिक ने कहा—इसके दोनों हाथ काट कर छोड़ दो, ताकि यह जीवन-भर किसी जर्मन पर हाथ उठाने की सजा भुगतती रहे। रूसियों के लिये यह अच्छा सबक होगा! इसके बाद तो अन्या सात जर्मनों के प्राण ले चुकी है। मुझसे तो यही अधिक बहादुर निकली!' यह कह कर ईगोर बड़े जोर से हँस पड़ा। सर्जन ने अन्या को चूम कर छाती से लगा लिया।

—४—

अभियुक्त को सम्बोधित करते हुए विचारपति ने कहा—'कप्तान जोहान मिलर, ईगोर यारत्सेफ का बयान तुम सुन चुके हो। तुम्हें कुछ कहना है? तुम अपने अपराध स्वीकार करते हो?'

'मैं कह ही क्या सकता हूँ?'—कप्तान मिलर ने चमकती हुई सजल आँखों से विचारपति की ओर मुखातिब होकर कहा—'१९०७ के चौथे हेग-कन्वेंशन की ७वीं धारा मुझे मालूम थी। उसके विपरीत युद्ध-बन्दियों पर जुल्म करने के मैं खिलाफ भी था, पर अफसरों के कठोर आदेश के सामने लाचार था। मैं अपने अपराध स्वीकार करता हूँ।'

'और तुम कर्नल फिट्ज़ साकेल ?'—विचारपतिने पूछा।

'अपनी करनी पर मै लज्जित हूँ, विचारपति !'—हतप्रभ होते हुए कर्नल साकेल ने कहा—'पर, सच मानिए, नागरिकों को लूटने, सताने, उनका अङ्ग-भङ्ग करने, अनिवार्य श्रम के लिये स्वस्थ नागरिकों को जर्मनी भेजने, कम्यूनिस्तों को गोली से मारने या उनकी आँखे निकालने, गरम चाकू से उनके चेहरों पर पञ्चकोना सितारा या स्वस्तिका का चिह्न बनाने, इन्हे भूखों मारने और छोड़ने से पहले प्रत्येक स्थान को जला कर राख कर देने के जितने भी काम मैने किये है, वे सब ऊपर के हुक्मों के अनुसार। अपनी सफाई मे मै ये सब हुक्म पेश करता हूँ।'

यह कह कर कर्नल साकेल ने फ़ाइलों का एक पुलिन्दा सरकारी वकील की मेज पर ले जाकर रख दिया।

'और बर्गोमास्टर विल्हेम बौक तुम्हे क्या कहना है ?'

'मै तो अपना मुँह दिखाने लायक भी नही हूँ, कहूँ भला क्या ? मुझे रूसी मोर्चे पर यह कह कर भेजा गया था कि वहाँ अनाज के पहाड़ लगे है, शराब के तालाब भरे है और परियों को मात देने वाली रूसी छोकरियों की पल्टन की पल्टन मन बहलाने को है ! तुम जो चाहो, सो करना। खूब खुल कर खेलना। पर यहाँ आने पर मुझे काम यह सौपा गया कि मै अफसरों के लिये रूसी छोकरियाँ जुटाऊँ। जो आने या जर्मन अफसरों को सुखी-सन्तुष्ट करने मे आनाकानी करें, उन्हे या तो गोली से उड़ा दूँ या उनके नाक, कान, छातियाँ, हाथ,

पाँव आदि काट लूँ। नंगा करके उन्हें बेरहमी से पीटूँ, उनके बाल जला दूँ और उन्हे अन्धा करके हमेशा के लिये कुरूप तथा बेकार कर दूँ। आखिर मैं भी आदमी हूँ, इस स्वाधीनता ने मेरी पाशव वृत्तियों को भी उभारा और फलत न मालूम कितनी मासूम और कमसिन लड़कियों, नर्सों, अध्यापिकाओं, सामूहिक खेतों की मजदूरनियों आदि के साथ मैंने जोर-जुल्म तथा बलात्कार किया। चाँदमारी के निशानों के लिये न मालूम कितनी माताओ की गोद से मुझे उनके मासूम बच्चों को छीनना पड़ा। पर मै अपने अफसरों के कठोर आदेश के आगे लाचार था।'

'कार्पोरल रूथ, तुम्हे क्या कहना है ?'

'मुझे तो सिर्फ यही कहना है कि मुझ पर जो अभियोग लगाएं गए है, वे मेरे असली कारनामों का दशमांश भी नही हैं। अधिकृत-रूस के इस भाग मे शायद ही कोई ऐसा जुल्म हुआ हो, जिसमे मेरा हाथ न हो। मुझे आदेश था कि अधिकृत क्षेत्रों की लूट मे वैयक्तिक दिलचस्पी लेना हर जर्मन का फर्ज है, क्योंकि सरकार को केवल लोहे, पेट्रोल, अनाज, गरम कपड़े, फेल्टबूट, युद्ध-यन्त्र आदि की ही जरूरत है, बाकी जो जिसके हाथ मे पडे, उसका। स्लाव-जाति और संस्कृति को समूल नष्ट कर देने के खयाल से यह भी कहा गया कि स्वस्थ-सबल स्त्री-पुरुषों को गुलामी के लिये जर्मनी भिजवाने मे मदद दूँ और शिक्षण-केन्द्रों, पुस्तकालयों, प्राचीन संग्रहों, क्लबों, कला-भवनो,

विश्वविद्यालयों तथा अन्य समस्त संस्कृति-केन्द्रों को नेस्तनाबूद करवा दूँ।'

'उराज़ बुज़ाकरोफ, तुम्हे क्या कहना है?'

'महोदय, मै उक्रेन का एक यहूदी बनिया हूँ। जर्मनों के सविशेष अत्याचारों के डर से मजबूरन मुझे गेस्टापो मे नौकरी करनी पड़ी। लाल-सेना के दो सैनिकों—कोल्या और वास्या—को मैंने ही पकड़वाया। कई कम्यूनिस्टों और गुरिल्लाओं की हत्या के लिए भी मैं ही जिम्मेदार हूँ। गोस्टापो के आदेश से ही कई गॉवों मे जाकर मै चिल्लाया कि लाल-सेना आ गई, लाल सेना आ गई, और जब नागरिक अपने छुपाए हुए अस्त्र-शस्त्र लेकर दौड़ आए, तो जर्मन मशीनगनों ने उन्हें खेत की मूली की तरह काट डाला। मेरे घर से जो सामान निकला है, वह सब रूज्हिन, सामबेक, बिल्की और सोरतावाला गॉवों की लूट का ही है।

'इनोकेन्ती गवारिलोविच, तुम्हें क्या कहना है?'

'मै क्रासनादोरका एक यहूदी ड्राइवर हूँ। यह सच है कि जर्मनी से पलायन करने के बाद मै आस्ट्रिया, चेकोस्लोवाकिया, यूगोस्लाविया और हुंगेरी मे रहा तथा तीन बार फर्जी पासपोर्ट से सफर करने के कारण दंडित भी हुआ। जर्मनों के अत्याचारों के डर से ही मैने उनकी नौकरी की और लाल-सेना के सब रास्ते उन्हे बताए। जर्मनों ने मेरे सामने यह घोषणा की कि उनके टैकों को रोकने के लिये सड़कों के

बीचोंबीच जो खाइयाँ खोदी गई है, उन्हें वे रूसियों के शवों से पाटेंगे। यह भी सच है कि कर्नल क्राइस्टमैन के आदेश से गेस्टापो के गुर्गे अस्पताल के सब रूसी रोगियों और कई नागरिकों को 'डूशा-गूबका' नाम की हत्याकारी गाड़ियों मे भर-भर कर ले गए और गैस से मारे गए लोगों की लाशों से कई खाइयाँ पाटी गईं।'

'डूशा-गूबका के बारे मे तुम क्या जानते हो ?'

'जी, ये ५-७ टनकी गहरे भूरे रंगकी ट्रकें थीं, जिनके पीछे जस्ता-चढ़े टीन की दोहरी दीवारों का एक बहुत बड़ा डब्बा लगा था। पीछे एक ऐसा दरवाज़ा था, जिसे बन्द कर देने पर उसमे हवा नहीं आ-जा सकती थी। इस डब्बे के फर्श मे छोटे-छोटे सूराख वाली लोहे की कई नलियाँ लगी थीं, जिनका सम्बन्ध ट्रक के इंजन से निकलने वाले धुँए से था। इसी के 'कार्बन-मोनोओक्साइड' से डब्बे मे बोरों की तरह चिने गए घायलों, औरतों और बच्चों को मार डाला जाता था और उनकी लाशे खाइयों मे डाल दी जाती थी।'

'दिन-भर मे ये ट्रकें कितने चक्कर करती थीं ?'

'६ से ८ तक, या फिर जितने आदमी होते थे, उनकी आवश्यकतानुसार कम-ज्यादा भी।'

'इस मृत्यु-ट्रक से ईगोर यारत्सेफ के बच निकलने का हाल तुम्हे कैसे मालूम हुआ ?'

'एक दिन अन्या अपने किसी साथी से कह रही थी कि

ईगोर ने ट्रक बन्द होते ही अपनी कमीज़ का एक हिस्सा फाड़ कर अपने पेशाब से गीला किया और उसे नाक तथा मुँह पर लगा लिया। इससे वह बेहोश होने से बच गया और जब अन्य सब लाशों के साथ उसे भी एक खाई मे फेंक दिया गया, तो रात को किसी तरह वह उसमें से निकल भागा। मैंने यह बात सुन ली और कर्नल माकेल को जा सुनाई। ईगोर को ज़िन्दा या मृत पकड़ने के लिये हम लोगों ने बहुत कोशिश की, पर उसका कुछ भी पता न चला।'

'अब अदालत बर्खास्त की जाती है'—फौजी विचारपति ने अपनी कुर्सी पर से उठते हुए घोषणा की—'अगली पेशी सोमवार को होगी।'

फिर तेजी से कदम बढ़ाते हुए वे ईगोर यारत्सेफ की ओर गए। उसका हाथ अपने हाथ मे लेकर उन्होंने कहा—'तवारिश, मैं हूँ कर्नल म्याकोवस्की, फौजी विचारपति, तुमने मुझे पहचाना ?'

'भला, तुम्हें नही पहचानूँगा, तवारिश म्याकोवस्की ?'—कह कर ईगोर ने ज़ोर से म्याकोवस्की के हाथ को झकझोरा।

ईगोर की कनपटियों को स्थिर दृष्टि से देखते हुए म्याकोवस्की ने कहा—'बायरन के 'प्रिज़नर ऑफ शिलन' मे पढ़ा था कि चिन्ता, यन्त्रणा और आघात से रातोंरात लोगों के बाल सफेद होजाते है। अब तक इस बात पर विश्वास नही होता था। आज २७ वर्षीय ईगोर के सफेद बाल देख कर

बायरन के कथन की यथार्थता पर विश्वास कर सका हूँ। अच्छा चलो, तुम्हे पहुँचा दूँ ?'

'अस्पताल'—ईगोर ने शान्तस्थिर स्वर में कहा और दोनों मोटर पर सवार होकर अस्पताल की ओर चल पडे।

—५—

घरों के मलबों के बीच तख्ते बिछाकर बनाई गई रूज्हिन की जन नाट्यशाला शेक्सपीयर के 'मिड-समर-नाइट्स ड्रीम' के मंच की याद को ताजा कर देती थी। रूज्हिन-वासियों के चेहरों पर आज वही स्वाभाविक मुस्कराहट थी, जिसने जार के जुल्मों से मुक्ति पाने पर एक दिन उनके चेहरों को चमकाया था। आज उन्हे जिन्दगी अधिक प्यारी और जवानी अधिक स्पृहणीय लग रही थी। अभिनय आज उनके जीवन की यथार्थता के अधिक निकट था और संगीत कानों को अधिक प्रिय। आज जैसे उन्हे इनके आनन्दोपभोग का नैतिक अधिकार मिला था।

पहले 'मस्काओ-आर्ट-थिएटर के प्रसिद्ध अभिनेता वाइसिली इवान काशालोव-लिखित "Wit Works Woe" (बुद्धि से शत्रु पर विजय) और "The Forest" (जंगल) के कुछ भाग खेले गए और बाद मे 'मैकबैथ' का चौथा अंक। उसके घृणा और जुल्मो के दृश्यों को दर्शकों ने जर्मन-अत्याचारों की याद ताजा होने से विशेष पसन्द किया।

अभिनय का आयोजन रूसी बच्चों के प्रसिद्ध 'तिमूर-

संघ' की ओर से किया गया था। उसकी समाप्ति के बाद संघ के नायक विक्टर सामोखिन ने कहा—'साथियो, हमारा आज का अभिनय इस बात का सबूत है कि हम मिटे नहीं है, मिटेंगे भी नही—दुनिया की कोई शक्ति हमें मिटा नही सकती, क्योंकि हम स्वतन्त्र हैं और ज़िन्दा रहने का हमे अधिकार है। मनुष्य ने अज्ञान पर, अन्धकार पर, अन्धविश्वास पर और प्रकृति पर विजय पाई है। उसने सागर बाँधे है, नदियों के प्रवाह बदल दिए है, हवाओं को अपनी चेरी बनाया है, पहाड़ों को नापा है। फिर क्या वह बर्बर नात्सियों के कुछ दलों के आगे हार मान लेगा?'

संघ की मन्त्रिणी सोनिया मोनोवस्किना ने कहा – 'ईगोर की आँखें अब नही लौटेंगी, अन्या के हाथ भी नही लौटेंगे, पर टूटे हुए घर एक दिन फिर खड़े होकर हवा और धूप से खेलेंगे। मुरझाए हुए फूल पौधे फिर लहलहाएँगे। बच्चों की किलकारियों से फिर यहाँ का वातावरण संगीतमय हो उठेगा। राख और लाशों से ढँकी भूमि एक दिन फिर हरे-भरे खेतों से सुजला-सुफला होगी। हमारे घाव एक दिन भर जायँगे, हमारी स्वाधीनता के लिए बलि हुए बन्धु-बान्धवों का वियोग भी एक दिन हम भूल जायँगे, पर लाशों से पटी खाइयाँ, स्त्री-बच्चों के दहन से काली हुई घरों की दीवारे, माँ-बहनों का अपमान और मासूम बच्चों की हत्याएँ, स्मृति की खूनी थाती बनकर सदा हमें बर्बरता के विरुद्ध लड़ने को उद्यत एवं उत्तेजित करते रहेंगे।

खून के लिए खून, मौत के लिए मौत, यही हमारा नारा होगा !'

मञ्च के बीच मे खड़ी होकर संघ की सॅगीत-सञ्चालिका एलेक्ज़ेन्द्रोवस्काया ने अन्तिम गान आरम्भ किया। खड़े होकर सब दर्शक उसके स्वर मे स्वर मिला कर गाने लगे —

सब मिल कर बोलो जय !
आज रूस की, आज विश्व की,
आज नई मानवता की जय !—सब०
अद्भुत आज क्रान्ति की यह जय,
अत्याचार-भ्रान्ति की यह क्षय !—सब०
सब मिल जीवन की बोलो जय,
मानव औ' स्वतन्त्रता की जय !—सब०
बिगड़े भवन हॅसे फिर सुखमय,
उजड़े नगर बसें फिर निर्भय !—सब०

क्या से क्या

[बलभद्र दीक्षित]

(१)

प्यारेलाल और पियारा दोनों एक ही खाट पर सोये थे। चैत्र का कृष्णपक्ष था। हल्की गर्मी हो रही थी। आधी रात के स्यार बोल चुके थे। प्यारेलाल खर्राटे भरने लगे सोने के पहले उनको सुलाने के लिये कई प्रयत्न पियारा ने

किये। बार-बार जम्हाने लगी। आले में जलते चिराग़ की बत्ती दबा कर बहुत धीमी कर आई। पति की बातों का जवाब, ऊँघती-सी अस्पष्ट भाषा में, अन्त में सिर्फ 'हूँ' करके दे देती, उसका सिर प्यारेलाल के कन्धे पर था, शरीर सोया-सा शिथिल, परन्तु मन अपने आगे के मनसूबों की गिरहें बाँध-खोल रहा था।

चिराग़ का पूरा तेल जल गया। फिर बत्ती जलती-जलती पेंदी पर पहुँची। अन्त में पछुवा हवा के सिर्फ एक हल्की साँस लेने से ही वह गुल हो गया। न ज्यादा धुवाँ, न गुबार। ठीक उस बुड्ढे आदमी की तरह, जिसके कुल दुनियावी अरमान निकल चुके हैं और मरण-शय्या की केवल एक ही हिचकी में शान्त हो जाना चाहता है।

पियारा ने करवट ली, बाँये हाथ की चूड़ियाँ खनकाईं, सिरवे पर छागल बजाये—सिर्फ यह देखने को कि प्यारेलाल सोते हैं या जागते। अपना सिर प्यारेलाल की बाँह से निकाल कर, उसे चुपके से उनके सीने पर रख दिया। चारों पैरों पर पड़ी हुई चादर में फँसे पैर निकाले और ज़मीन पर खिसक आई। खाट 'चर्र' से बोली, लोटे पर रक्खा हुआ गिलास पैर लगने से झन्नाता हुआ लुढ़क गया।

प्यारेलाल के कुनमुनाने से थोड़ा ठिठकी। फिर पैरों को चापती अपनी कोठरी की ओर चली गई। पिछवाड़े की इमली पर उल्लू बोला। बसारे में बँधी बकरी की पठिया ने

छींक मारा।

बङ्गले की बग़ल मे कुछ दूर पियारा के बाप बलई मिसिर सो रहे थे। सिर उठा कर पियारा को एक बार उन्होंने देखा। फिर अपनी पिछौरी सिर से पैर तक तान ली।

कोठरी मे आकर पियारा ने एक बार फिर देखा, प्यारेलाल ज़ोर से खर्राटे ले रहे थे। चिराग़ जलाकर अपनी कपड़ों की पिटारी खोली। आइना निकाल कर कंघी से बिगड़े बाल सॅवारे। मुँह मे इधर-उधर पान की पीक लग गई थी, एक कपड़ा भिगो कर उसे पोंछ दिया। लहॅगा, ओढ़नी और सलूका निकाल कर पहने। सब भड़कीले, सस्ते सिल्क के थे। ओढ़नी का कपड़ा पतला था, इस लिए कि सलूके के स्तनों की पन्नी देखने वालों को आकर्षक और सुन्दर जॅचे। उसने पॉच-छ. बीड़े पान लगा कर डिबिया मे रक्खे। एक खा लिया, ऊपर से थोड़ी तम्बाकू मुँह मे डाल ली। फिर उठकर धीरे से कोठरी की सॉकल चढ़ा दी। बाप की चारपाई के पास से होती एक बार फिर प्यारेलाल के सोने की पड़ताल करती, घर से बाहर हो गई।

बलई ने सिर उठा कर देखा। जब जान लिया कि पियारा चली गई, तो एक संतोष की सॉस लेकर करवट बदल ली। फिर हमेशा की तरह, सिरकटे मुर्ग़ से, तीन-चार बार तड़प कर निर्जीव हो गये।

पियारा जब कभी छबीले के पास जाती तो बलई की यही

कैफियत होती । जब तक वह चली नही जाती, जाने की राह देखा करते । जब चली जाती तो सिर पीट लेते । एक बार लोढ़ा मार लिया था जिससे मत्थे का ज़ख्म कई महीने पकता-फूटता रहा ।

यहाँ उनकी बात नही कही जा रही है, जिन्हें खाने-पीने और रहने-सोने का कष्ट नहीं होता, रोज-ब-रोज़ ईश्वर की की दयालुता के प्रति जिन की श्रद्धा बढ़ती जाती है । वे यदि चाहें तो शिष्टाचार की पवित्र ज़िन्दगी बसर कर सकते है । न उनसे कुछ कहना है, जो परम्परा से प्रचलित विकृत रूढ़ियों की चोटे खा-खा कर चेतनाशून्य हो गये है, और उन रूढ़ियों की रक्षा के लिये बग़ैर उफ किये जघन्यतम काम करने को सदा तैयार रहते है । दरअसल यह बात है उन लोगों की जो इन कृत्यों से ऊबकर सामाजिक नियमों में तरमीम व तंसीख करना अपना कर्तव्य समझते है, पर नही कर पाते—जो समझते हुए मजबूरन् पाप करते है—जो चाहकर भी सच्चरित्र नही रह सकते—फाकाकशी मे या आबरूरेज़ी मे जिन्हें हिये और कपाल से प्रकाश खोजना पड़ता है—जिनके बच्चे व्यभिचारी होने को मजबूर है और किये जाते है—जिन का हृदय कट कर रो उठता है—जिनकी गहरी निश्वासों से यह भयानक तर्क उठता है कि ईश्वर है या नही, यदि है तो कहाँ, यदि नहीं तो कैसे ।

गाँव के पच्छिम गोमती की छड़ान (कछार) है,

चौड़ी कम, लम्बी ज्यादा। ज़मीन मज़बूत होने की वजह से वसन्तपञ्चमी के करीब लोगों ने खरबूज़े और तरबूज के बीज थाल्हों मे छिटका दिये है। दो-एक खेत बबूल या बेर की टहनियों से रुँधे है। अभी फल नहीं आये, इसलिये उन्हे रखाने को रात मे यहाँ कोई नहीं रहता। गाँव से तिरछी-तिरछी रेंगती हुई पगडण्डी घाट पर जाकर समाप्त हो गई है। वहाँ एक कंकडीली कगार पर फूस की झोंपडी है।

नदी के उस पार मरघटियों मे एक मुर्दा जल रहा था। दक्षिणी और पछुवा हवा के झोंकों मे जलती हुई चर्बी की बदबू भरी थी। बिखरे हुए बेर-बबूल के काँटों और हड्डी के टुकड़ों को रौंदती हुई पियारा घाट की ओर बढ़ रही थी।

इस टिपरा घाट के पूर्व तीन सौ गज़ नदी की धारा के उतार पर बुड़हा घाट है। किनारे पर चार-पाँच गूलर और दो पाकर के पेड खडे है। यही आकर सरायन मिली है। संगम मे बड़ा तेज़ भँवर है। यहाँ एक लद्धड़ मगर अपनी माठ बना कर रहता है। गाँव के लोग यहाँ दिन मे आते भी डरते है। फिर रात के सन्नाटे का तो कहना ही क्या है।

छबीले कभी-कभी यहाँ आकर रहता था। उसके साथी-सलाही, उस पार नटिनों के पुरवे से, तैर कर आ जाया करते थे। एक टूटी मठिया थी। चबूतरा अभी मज़बूत था। इस वक़्त भी छबीले अपने दो दोस्तों के साथ चरस का दम लगा रहा था। लम्बी चिलम, अठन्नी-भर चरस बिठाकर, तैयार की

गई थी। पियारा का इन्तज़ार था। प्यारेलाल की वजह से दो दिन ख़ाली चले गये थे। लेकिन आज पियारा ने सिर की बाज़ी लगा कर ठीक मौक़े पर पहुँचने का वादा किया था।

दिन को नदी नहाने आकर पियारा बात पक्की कर गई थी।

(२)

सन्नाटे मे पियारा झौंपड़ी की ओर बढ़ रही थी। पैरों की आहट मालूम करके छबीले ने सीटी बजाई। पियारा समझ कर उधर ही मुड़ गई। छबीले के साथी धड़ाम-धड़ाम नदी मे कूद कर उस पार के अँधेरे मे समा गये।

छबीले के पास पहुँचते ही पियारा ने चरस की चिलम लेकर कस-कस कर तीन-चार बार दम लगाई। चिलम से छः अँगुल ऊँची लपट निकल उठी। एक छोटी डिबिया से कोई सफ़ेद पाउडर-सा, चाक़ू के फल से निकाल कर, छबीले ने पियारा को चटाया। फिर उसी जूठे फल से थोड़ा और निकाल कर खुद चाट लिया। ज़रा देर दोनों मुँह बन्द किये रहे। फिर पियारा ने डिबिया से पान निकाले। एक ख़ुद खा लिया और, एक अजीब अन्दाज़ से दूसरा छबीले के मुँह मे ठूँस दिया। डिबिया के एक कोने मे चूना था। करीब छः-छः माशे दोनों ने मुँह मे रख लिया। फिर साँप के गर्म जोड़े की मुद्रा मे दोनों आपे से बाहर हो गये।

कृष्ण द्वादशी का चन्द्रमा गाँव के पूर्व आम के बाग से

झाँका। छबीले की गोद में सिर रखे पियारा ने उसको दे गहरे नशे से डँसे रहने पर भी पियारा ने लज्जा से छबीले गोद मे अपना मुँह छिपा लिया।

पास ही सँभालू के दरख्तों मे कुछ खड़क हुई। फिर सूखी पत्तियाँ चरमराईं। छबीले ने समझा, कोई कुत्ता है। थोडी ही दूर कमीनों के ढोर निकलने का स्थान था। इसलिए वहाँ कुत्तों का होना बेजा न था। छबीले के जोर से दुतकारने पर, कुत्ते के बजाय, कुलाँच मार कर प्यारेलाल सामने आ गये। गुस्से मे पागल और गुर्राते हुए। उनकी लुँगी चढ़ी थी। सिर कपड़े मे कस कर बाँधा था। एक हाथ में बँकिया थी, एक मे चाकू, लाठी बग़ल के नीचे। तीन-चार आवारा लौंडे भी मुखबिरी करते साथ थे। छबीले के डर से, सामने न आकर, इधर-उधर छपटिआये थे।

प्यारेलाल ने दाँत पीसकर पियारा को एक बेहूदा गाली दी। साँस उनकी फूल रही थी। कुछ उद्वेग और क्रोध के कारण और कुछ दमे के दौरे की वजह से। छबीले प्यारेलाल को सामने देख कर और भी गुस्ताख हुआ। प्यारेलाल की वहशत का ठिकाना न था। मरने-मारने को तैयार हो गये। पीकर चले थे। पियारा को भी सोने के वक्त पिलाया था। वह एक ओर सिमटी हुई, प्यारेलाल के काँपते हुए कमज़ोर हाथ में, बहुत तेज चाकू की फजीहत देख रही थी।

छबीले ने पियारा को अपनी ओर घसीट कर प्यारेलाल

से भाग जाने को कहा, लेकिन उन पर अब चांडाली सवार हो चुकी थी। छबीले के दाहने हाथ पर बाँके का वार कर दिया। छबीले बाँके, बिछुआ, बिझौट, बाना-बनैठी—इन सब का उस्ताद था। बाँका प्यारेलाल के हाथ से छूटकर गूलर की जड़ मे जाकर लगा और वह खुद अपने ही ज़ोर से बाज़ू के बल बालू मे धँस गये। फ़ौरन् फिर उठे। इस बार चाकू से पियारा की नाक काटने को झपटे। गाली पहले से भी ज़ोरदार थी।

छबीले ने एक हाथ घसीट दिया। चाकू छूटकर प्यारेलाल के पैर मे चुभ गया। साथ ही दो लात और तीन-चार लप्पड़ भी रसीद किये। होश ठिकाने आ गये। छबीले अब अभुआ चुका था। प्यारेलाल की बानगी और देखता, लेकिन पियारा ने उसे अपनी कसम दिलाकर रोक दिया। फिर पियारा के साथ वह एक ओर चला गया।

प्यारेलाल की निगाह दूर तक दोनों का पीछा करती चली गई। फिर टइहल कुत्ती की तरह अपने आँखों के घर में आकर पड़ रही। प्यारेलाल ने आँखें बन्द कर ली। जीवन में पहली बार उनकी निगाह उनके जीवन पर पड़ी। बेइज्ज़ती का काँटा अंतरतम मे खरक उठा। शरीर मे कोई ख़ास चोट न आई थी, लेकिन दुर्बल आत्मा इस कदर घायल हो गई थी कि पागलों की तरह कई दफे उन्होंने अपना मुँह पीट लिया, पड़े-पडे अपने सिर पर बालू उलीच ली। फिर ढह गये, जैसे अंतिम क्षणों की प्रतीक्षा कर रहे हों।

—३—

प्यारेलाल के साथ के लड़के छबीले की पहली ही तड़प मे रफूचक्कर हो गये थे। इस वक्त उन्हे कोई पानी तक देने वाला न था। चार-पॉच गीदड़ घेरा बनाकर बैठे थे, मगर चूॅकि अभी सॉस चल रही थी, इसलिए करीब नही आ रहे थे। कुछ देर बाद प्यारेलाल करवट लेकर ॲगड़ाये, फिर ऑखे खोल दीं। नदी के उस पार एक बबूल पर भुजंगा "ठाकुर जी ठाकुर जी" चिल्ला रहा था। वह उठ बैठे। उनके अब तक के हर साल, हर महीने और हर दिन के जीवन मे नशे के बाद व्यभिचार और व्यभिचार के बाद नशा हुआ करता था। सुबह बाग मे, दोपहर को दालान मे, शाम को कोठे मे, गर्ज़ कि किसी न किसी तरह, किसी न किसी मात्रा में, कही न कहीं होता जरूर था। शहर भर की गोरी, गन्दुमी और सॉवरियों का पता और हुलिया उनकी और उनके तमाशबीनों की ज़बान पर लिखा था। यन्त्र बनते, तावीज़ लिखे जाते, वशीकरणमन्त्र सिद्ध किये जाते, सिर्फ एक गिरे हुए मॉ-बाप की गिरी हुई लड़की को और गिराने के लिए। अमीर हो या ग़रीब, जौहर हर जगह हो सकता है। ऐसे टुकड़खोरों का आदमी न पहचान पाना कोई बड़ी बात नही। यदि हो जाते कही सती की आग के दर्शन तो दुम दबाकर भागते दिखाई देते। फिर घर पहुॅच कर उसके नाम पर एक ख़ास किस्म का व्यभिचार करके मिथ्याचार करते। आख़िर मे नशा खाकर ग़म गलत किया

जाता। बैंकों के ब्याज से, लेन-देन के फँसाव से और जाली प्रोनोट और दस्तावेजों की तहरीर से हजारों रुपये, केवल इसी ध्येय की पूर्ति के लिये पैदा किए जाते। शहर और मुहल्ले में सब कोई धी-पूत धराये थे। सब कोई सदाचार और ब्रह्मचर्य का मूल्य समझते थे। अपनी कमजोरियों को अपने बच्चों में न आने देने का शक्ति भर सब कोई प्रयत्न करते थे।

प्यारेलाल ने गोमती में जाकर मुँह-हाथ धोया। एक बार फिर वही कमजोरों का सा गुस्सा, बिना कुछ आगा-पीछा सोचे आया कि घाट की ओर चले और छबीले से अपमान का बदला ले। गूलर पर एक बन्दर बैठा था। प्यारेलाल की ओर देखकर उसने खीसे निपोर दी। प्यारेलाल ने बीच धारा में एक डुबकी लगाई। भीगे कपड़े पहने, नदी का जल हाथ में उठाकर छबीले से बदला लेने की कसम खाई। फिर तैर कर नदी पार कर गये।

मिसिरपुर, अपने ससुराल वाले गाँव में, प्यारेलाल को मुँह दिखाने की हिम्मत न हुई। नंगे सिर, नंगे पैर, पागल की तरह आधी धोती ओढ़े, गलियों में दुबकते, अपने घर पहुँचे।

ड्राइंगरूम में एक आलमारी थी। उसमें कई क़िस्म की शराब गँजी पड़ी थी। छ: पेटियाँ डन-क्रैगन ह्विस्की की थीं। ससुराल जाने के पहले एक दावत दी गई थी। तमाशबीन दो बजे तक डटे रहे थे। नाच हुआ था, भाँड़ भी आये थे। एक नौची की नथ प्यारेलाल ने उतारी थी। कमरा बिना साफ किये

ही बन्द कर दिया गया था। इसमे और बगल के खाने के कमरे मे भभक और दुर्गन्ध भरी पड़ी थी। प्यारेलाल ने दरवाजा खोला। बड़ी बदबू आ रही थी। फिर भी अपना किया देखने के लिये अन्दर घुस पडे। जहाँ रंडियाँ नाची थी, चारों ओर के फर्श, कालीन, गाव-तकिये और किसी-किसी गिरदे पर पित्त से भरी शराब पीकर की हुई पीली पीली कै पड़ी थी। एक सफेद चाँदनी पर टोमैटो की चटनी का भरा हुआ शीशे का जार टूट गया था।

नशे की तीसरी अवस्था के पहले खोली हुई शराब की बोतले कुछ खाली, कुछ भरी, तीन-चार सोडावाटर की बोतलों के ऊपर लुढ़की पड़ी थी। बीच कमरे की गोल संगमरमर की मेज़ पर एक नगी वेनिस की औरत की स्टैच्यू थी। किसी तमाशबीन ने उसे अपनी दुपल्ली जरदोज़ी की टोपी पहना दी थी। वह अब भी आधा मुँह ढके खड़ी थी! बडा पीकदान जाजिम के ऊपर औंध गया था, जैसे बकारा काट दिया हो। दो जनानी शलवारे तबदील की हुई पड़ी थीं। एक इज़ारबन्द मे दो मसकी हुई चोलियाँ बाँध कर, प्रमाद की हालत मे, लैप स्टैंड के ऊपर किसी ने कुछ तमाशा बनाया था।

प्यारेलाल खाने के कमरे मे घुसे। यहाँ की हालत और भी अजीब थी। मेज़ों पर कुर्सियाँ, कुर्सियों पर मेजे, फूलदानों पर जूते और जूतों पर गुलदस्ते रख-रख कर शराबियों ने अपने दिल के अरमान निकाले थे। कुल्ली करने के तास, चिलमचियाँ,

तश्तरी और रकाबियाँ जूठन में सनी इधर-उधर तितर-बितर पड़ी थी। खाना ज्यादातर हिन्दोस्तानी था, लेकिन नकल अँगरेजी डिनर की की गई थी। छुरी और काँटे बिना इस्तेमाल किये हुए पड़े थे। लोगों ने हाथों से नोच-नोच कर खाया था। चिड़ियों की हड्डियाँ, मछलियों की पसलियाँ और काँटे, गूदा निकालने के लिये तोड़ी हुई पोंगियाँ, मेजपोशों और फर्श पर गिरी पड़ी थीं। तीन-चार जगह ख़शी के पुट्ठे इतने बड़े थे कि बछड़े के से जान पड़ रहे थे। दावत की शाम को प्यारेलाल के कुछ शिकारी दोस्त, एक बहुत बड़ा गोन (बारहसिंगा) नेपाल तराई से मार कर लाये थे। छोटे मोटे बधिया बैल-सा था। कुल्हाड़ियों से काट-काट कर बावर्चियों ने उसकी लाश पर क़ाबू किया था। प्यारेलाल नंगे पैर थे। उनके पैर में एक हड्डी चुभ गई। उसे निकाल कर बाहर निकले।

बावर्चीखाने की बगल के गोदाम मे दो ज़िन्दा बकरे बँधे मिले, जो इस्तेमाल न हो सके थे। प्यारेलाल और ताला लगाने वाला नौकर दोनों नशे की हालत मे थे। बकरे वही बँधे रह गये। एक ढाबली मे कुछ बटेरे बिना दाना-पानी के मर गई थी। इस वक़्त उन्हें बिमते और चींटे चाट रहे थे। बकरों मे एक अभी मरा था। दूसरा प्यारेलाल को देख कर मिमिआया। वह घबरा कर पानी लाये। तजुर्बा था नहीं। भरा ताश सामने रख दिया। उसने कसकर पी लिया और ढेर हो गया। प्यारेलाल बकरे की आँखे उलटते न देख सके। बाहर

भाग आये।

कई रोज़ तक प्यारेलाल घर की हवेली से बाहर नहीं निकले। एक-दो खास नौकरों को छोड़ कर किसी को अन्दर आने की इजाज़त न थी। बाहर दफ्तर का काम हमेशा बड़े मुनीम जी करते थे। अब भी कर रहे थे।

प्यारेलाल उच्च कुल के कान्यकुब्ज ब्राह्मण थे। शाही ज़माने से इस घर का लेन-देन का व्यवसाय मशहूर था। शहर के सेठ लोग रोज़गार के मामले मे इस घर से कभी बाजी न मार सके। नवाबी मे इनके परदादे बरदी रखने वाले बनजारों को, जो ऊँट की खाल के कुप्पों मे घी भरते थे और सोने की सिलों मे भुगतान करते थे, भरती (लागत) उधार देते थे। प्यारेलाल के बाप रेलवे के बहुत बड़े ठेकेदार थे। उन्होंने अपनी ज़िन्दगी मे प्यारेलाल को अफसरान से इतना मिला-जुला दिया कि रेलवे से घर का सा मामला रहा करता था। डाली की सजावट इनका पुश्तैनी हुनर था। पढ़े-लिखों और धनिकों मे प्यारेलाल की साख मानी जाती थी। ऊँच-नीच की भावना और बिस्वाप्रथा कायम करने मे इनके पुरखों का बहुत बड़ा हाथ था। इनके दादा के परदादा के आजा उस वक्त कन्नौज के राजा के यहाँ दीवान थे।

शहर के बाहर एक बाग़ था। प्यारेलाल यहीं रहने लगे। आदमी बहुत-सी कमजोरियाँ छोड़ देता है, सिर्फ एक नई कमज़ोरी को पकड़ने के लिए। प्यारेलाल भी मिट्टी से सोना

हो रहे थे, छबीले से बदला लेने के लिए। वह अपने कस और बल की जाँच करते और जब अपने हिसाब से अपने को छबीले से कम पाते तो फिर साधना मे मग्न हो जाते।

(४)

पियारा ब्याह मे ससुराल न गई थी। गौने मे बिदा होकर वह प्यारेलाल के घर गई, लेकिन पन्द्रह दिन मे ही फिर मिसिरपुर आ गई। इसकी वजह थी—'कुछ कानी चर्खी, कुछ गीली कपास।' न प्यारेलाल वहाँ उसे रखना चाहते थे, न खुद ही वह वहाँ रहना चाहती थी! इन दिनों पियारा चौदहवे साल मे चल रही थी। किशोरपन दूर हो रहा था। वह भरी हुई गाय की कलोर-सी थी, जो बछड़ों को दूर से ही देखकर भड़भड़ाने लगती है। वह घबराकर घंटों इकली बैठना चाहती। किसी से कुछ कहने की हिम्मत न होती, न बोलने को जी चाहता।

प्यारेलाल कच्ची उमर मे स्कूल से ही आवारा हो चुके थे। इस वक्त तो अपनी पूरी जवानी मे थे। जब पियारा से पहली बार मिले, मुँह से शराब की बदबू और हाथ से सिगरेट की हीक आ रही थी। पियारा जब मिसिरपुर मे थी, नित अक्षत और जल चढ़ाकर शंकर महादेव की पूजा किया करती थी कि तमाम कुलीन और उच्चाभिलाषिणी लड़कियों की तरह उसे भी सुन्दर-से-सुन्दर घर और वर मिले। लेकिन पियारा की निगाह मे जो सबसे पहला वेहया आदमी आया, वह उसका

पति प्यारेलाल था। पियारा के नागिन-जैसे फन मे सब से पहला धक्का यहीं लगा।

दो महीने के साथ मे पियारा प्यारेलाल की हरकतों से आजिज़ आ गई। अंत मे अपने मायके मिसिरपुर जाते वक़्त वह पीली-पीली छ. महीने की बीमार-सी जँचती थी। घृणा का उद्रेक तो उसे तब हुआ, जब वह दो साल मिसिरपुर रहकर, कुछ तो अपने हाथ और बहुत कुछ अपनी भावज से सीख-समझकर, प्यारेलाल-जैसे मर्द की औरत बनकर उसके घर आई। पहली दफे प्यारेलाल के साथ ग़ैर औरत को मौके-बे-मौके देखकर वह जलने लगती थी। लेकिन अब उसने ऐसी औरतें पाल रक्खी थीं, जो उसके इशारे पर प्यारेलाल को नरक तक घसीट ले जाने का दम रखती थीं। प्यारेलाल इस बार कहते थे कि उनके घर म अब पहले से बहुत समझदार हो गई है। अब वह काले साँप की तरह विषपूर्ण, प्यारेलाख के सामने, 'मउहर'-सी बजने लगती। उसका एक-एक अंदाज बाँकपन से भरा था। इधर-से-उधर और आगे से पीछे झूमते हुए प्यारेलाल ने जिस दिन पहले-पहल अपने जूठे पैमाने से पियारा को शराब पिलाई, वह नाक के सुरों से कह रहे थे, उस समय उसकी एक-एक अदा लाख-लाख रुपये की थी। अब वह प्यारेलाल की साकी बनने के क़ाबिल हो गई थी।

सिर्फ पंद्रह दिन मे ही पियारा ने प्यारेलाल को अपनी मुट्ठी मे कर लिया। यारों के बहुत उखाड़ने पर भी उसने अपने

पैर ऐसे जमाये कि थोड़े ही दिनों में लोग घर की मालकिन का लोहा मान गये। जो नहीं माने, प्यारेलाल को घुमा-फिराकर उनसे ऐसा ख़िलाफ़ किया कि भागते ही बन पड़ा। आने के साथ ही पियारा ने थोड़े दिन तक कुंजी-ताली, रुपया-पैसा, काग़ज़-पत्तर घर में ऐसे रखना शुरू किया कि देखने वाले उसकी क़ाबिलियत पर दंग रह गये। लेकिन फिर, जिस तरह घरौंदे को पूरा करते-करते बच्चों मे अपने हाथ ही से उसे बिगाड़ देने की प्रकृति जाग उठती है, वही हाल उसका भी होने लगा। वह यह सब कुछ सिर्फ़ प्यारेलाल को अपने वश में रखने के के लिए कर रही थी। उसके अन्दर एक अतृप्ति थी, जो उसे हर समय और हर काम मे बेचैन बनाये रहती थी। खाने-पीने, हँसने-बोलने और कपड़े पहनने मे भी उसे कभी आसूदगी न होती थी। मिठाई खाती तो खाती ही चली जाती। मिर्च उस वक्त छोड़ती जब आँख, नाक और मुँह से आग-जैसी निकलने लगती। जो बहुत सुन्दर सारी होती, बदलते वक्त उसमे या तो सूराख़ कर देती अथवा पान की पीक और रोशनाई से उसे बर्बाद कर देती। सुन्दर फूल की ओर वह इतना देखती कि थक जाती। फिर लोगों की आँख बचाकर उसे मरोड़कर मसल देती।

पियारा को प्यारेलाल से आंतरिक घृणा हो गई थी। जब वह अपने से असंतुष्ट होती तो विचार करती कि प्यारेलाल ने ही उसकी यह गत बनाई है। उस समय उसे अपनी सोहाग

रात की याद आ जाती। प्यारेलाल के अनाचार से कचे तोड़े हुए उसके अंग जैसे फिर दर्द करने लगते। पति को देखते ही पियारा का जी होता कि उसे विनष्ट करके फिर न जाने कहाँ खुद भी वह अपने को मिटा दे। वह प्यारेलाल को ही क्या, आदमी के बच्चे भर को तरसा-तरसाकर मारना और अन्त में खुद भी तरस-तरसकर मरना चाहती थी।

—५—

पियारा ससुराल से मायके चली आई। उसका गाँव मिसिरपुर किसी समय मिसिरों की ही जमींदारी में था। अब कसवा बाड़ी के पठानों की मिल्कियत है। बलई मिसिर (पियारा के पिता) के एक बाबा को यह गाँव पाठकों से दहेज में मिला था। इनका खानदान एक अरसे से बड़ा शौकीन गिना जाता था। घर की औरतें बाहर पानी भरने न निकलती थीं। बलई मिसिर के एक चाचा को गाँव-जवार के लोग लखनऊ के नवाब कहा करते थे, कोई-कोई योगिराज भी कहते थे। जब गाँव-भर के लोग सो जाते, तब वह जागते और जब सब जागते, तब उनका आराम शुरू होता। चार बजे सुबह रात का भोजन होता। जमींदारी और अमीरी बहुत दिन तक चली, लेकिन उसके बिगड़ने और ग़रीबी के आने में भी बहुत दिन न लगे। दिन चले तो फिर चलते ही गये। पियारा के ब्याह के दिनों में रही-सही जमीन भी गिरवी हो गई। यद्यपि घर में खाने और खर्चने वाले ज़्यादा न रहे थे—पूत, पतोहू, पियारा और मिसिर

जी खुद—फिर भी कुछ पूरा न पड़ता। चार–छः महीने में सब पुरानी अल्ली-बल्ली साफ हो गई। मिसिरवंश ने कमा-कर खाना सीखा ही न था। छोटे मिसिर (पियारा के भाई) पठित मूर्ख थे। जब दिन अच्छे थे, उनके चचा ने ज़िला सीतापुर की गुमानीगंज की चौखट से, जो देहात मे संस्कृत व्याकरण-शिक्षा का केंद्र मानी जाती है, उन्हें लघुकौमुदी का पंडित कराया था। लेकिन शुष्क व्याकरण घोखने के बजाय वह एक साहित्यरसज्ञ निकले। श्रीमद्‌भागवत का अध्ययन उन्होंने स्वयं किया, अत. टीका भी मनमानी ही की। दशमस्कन्ध के शृंगार रस मे डूब कर छोटे मिसिर वह निकले। दिन में कोठरी वन्द किये गोपियों के सुन्दरतम चित्रों से बातें किया करते। श्री जयदेव के गीतगोविंद के कृष्ण से तो उन्हें डाह-सी होने लगती। उनकी स्त्री अपने बाप के तीसरे ब्याह की चौथी लड़की थी। कुछ पढ़ी भी थी। सारंगा-सदावृक्ष और तोता-मैना के किस्से ज़बानी शुरू होते। भाई खुद पढ़े थे और इसे पढ़ाया था। छोटे मिसिर अपनी स्त्री को गोपी बनाते, स्वयं श्याम सुन्दर बनते। कवि थे ही, कभी उस की आँखों को आम की फाँकें बतलाते तो कभी चिबुकाधर को किसी अनूठी उपमा पर तोल कर लाल कर देते। जब तक खाने को अन्न और शरीर मे रक्त रहा, यह विलास-लीला दिन दूनी रातचौगुनी चलती रही।

वह पियारा के ब्याह का साल था, जब छोटे मिसिर

को अपनी स्त्री क्या, चित्र की गोपियों से भी नफरत हो चुकी थी। साहित्य और दशमस्कंध का पाठ बन्द हो गया था। जिस दिन घर मे पहला फाका हुआ, छोटे मिसिर इधर कहीं, उत्तर मे भॉभर की ओर, भाग कर भीख मॉगने लगे।

बलई मिसिर भी कुछ 'त' 'म' कर लेते थे, पर इतना नही कि कुछ पढ़-लिख सकते। इन के बचपन मे तुलसीकृत रामायण की कोई खास प्रति घर मे थी। उसके क्षेपक मे श्रीराम-जानकी का विवाहोत्सव बड़े रोचक ढंग से लिखा गया था। बलई मिसिर के एक चचाजाद भाई रामायण के उस अंश को रोज़ नियमित रूप से पढ़कर प्रेमाश्रु बहाया करते थे। बलई को अपने किशोरपन मे रामायण मे वर्णित सलहज और सालियों का राम से खुला हुआ मज़ाक बड़ा प्यारा लगता था। इस कारण कथा का वह अंश कंठ हो गया था। जब तङ्गदस्ती बढी, तब बलई को जीविकोपार्जन की एक युक्ति सूझी। वह बहुत तड़के नदी मे नहाकर टीका-चन्दन कर लेते। पास-पड़ोस के पुरवा से निकल जाते। वहॉ दुपहरी काटते वक्त लोगों को रामायण सुनाते। पुस्तक सामने रेहल पर रख लेते और जहॉ तक हो सकता खूब गा-गा कर ध्यानमग्न भक्तगणों को सुनाते। यह दिखाने को कि पुस्तक से कथा पढ़ रहे है, वह थोड़ी-थोड़ी देर मे पन्ना भी उलटते जाते।

इस व्यवसाय से कई महीने तक बलई के कुटुम्ब का खाना-पीना और लोन-तम्बाकू चलता गया। जब पैसा था, घर

भर पान में बना हुआ ज़र्दा-तम्बाकू खाते थे। जब डली-कत्था लाने की भी ताब न रही तो चूना और सस्ता तम्बाकू मीज-कर औरत-मर्द दिन-भर फाँका करते। परन्तु बुरे दिनों ने बलई को यहीं से न छोड़ा। छोटे मिसिर एक दिन कसबे के क़स्साब से नीलगाय का गोश्त ले आए। घर मे हिरन का बता दिया। गोश्त पकाया गया और खाया भी गया। अन्त मे बात खुल गई। पठानों को क्या गरज़ कि वे नीलगाय के गोश्त को बकरे या हिरन का बतलाते। इस दिन से बलई मिसिर का लोटा बन्द हो गया। कथा बाँचने का व्यवसाय भी समाप्त हुआ और सब के सब भूखों मरने लगे।

जिस दिन पहले-पहल पियारा छबीले की ओर खिंची, उस दिन का अजीब और पुरदर्द किस्सा है। वह महुआ बीनने गई थी, जिन्हें खा-खा कर चार दिन से घर के तीनों प्राणी पानी पी रहे थे। अस्ताचल की ओर जाने वाला चैती का पूरा चाँद गाँव के एक छप्पर पर अटक-सा रहा था। पियारा ने महुए बीनकर काँछ मे भर लिये थे। फिर जड़ पर बैठ कर, थकी-सी, कुछ सोच रही थी।

छोटे मिसिर घर छोड़ कर भाग चुके थे। लोटा बन्द हो गया था। बलई दिन-भर हाथ पर हाथ धरे बैठे रहते थे। पठानों का कर्ज़ा खाया गया था, इस लिये दो तगादगीर घर घेरे बैठे थे। छबीले के पैग़ाम पर पैग़ाम आ रहे थे। घर का सारा कर्ज़ अदा और सब के खाने-पहनने का इन्तज़ाम

कर देने को कहता था। पियारा की भावज एक अहीरिन के साथ बैठ कर पवित्रता और पतिपरायणता का मख़ौल उड़ाया करती—पियारा की कोमल स्त्रियोचित भावनाओं को उखाड़ फेकने के लिए।

(६)

बलई मिसिर ने एक बार फिर मूछे चिकनाई। धोती और मिरजई चुन कर पहनने लगे। पठानों का कर्ज़ा अदा कर दिया गया। गाँव-भर मे उनका मुँह उजला हो गया। टूटे खँडहर घर की एक बार फिर लेसपोत हुई। अफीम का मज़ा दुगना करने के लिए एक गाय ख़रीद ली गई।

पियारा अब बड़ी शौकीन हो गई थी। प्यारेलाल के छबीले के हाथ पिटने के बाद जैसे हया का बाँध टूट गया था। यह छबीले के अच्छे दिन थे। घाट के ठेके से आमदनी तो बँधी-टकी थी, जिले के डाकुओं मे उसकी धाक अलबत्ता थी। लोगों से उसने चौथ वसूल करना शुरू किया। जङ्गल मे मङ्गल हुआ करता। अन्धेरी रातों का जलसा लोग डरते-डरते देखते और खुश होते। वे नटिनें और बेड़िने, जिनके मुँह से पान और पैर से जूती कभी न निकलती; छबीले का नाम सुन कर सूखती। तालू और मुँह का मोह छोड़ कर, नँगे पैर धूल मे नाचने दौड़तीं। जुए की फड़ पर वह छिन-भर मे सैकड़ों रुपया दान कर देता था। देहाती पण्डित उसे जीतने का मुहूर्त बतलाते और सफलता के लिये "बगलामुखी" का अनुष्ठान

करके अपनी जीविका जुटाते। दूर की न सोच पाने वाले लोग उसे बिना राज-पाट का राजा कह कर अपना उल्लू सीधा करते।

मिसिरपुर के पठान ज़मीदारों को पियारा और छबीले का रवैया अच्छा न लगता था। चौहद्दी मे बलई मिसिर की शहर मे ब्याही लड़की मशहूर हो गई। कभी कभी भोले किसानों के नौजवान लड़के भी उसके साथ बेकायदा उठते-बैठते देखे गये। पूरी जवार छबीले के ख़िलाफ़ हो गई। दूसरे साल, कोशिश करके, लोगों ने उसे घाट का ठेका न लेने दिया। एक डाके मे चालान कराके जवार के तेज़ लोगों ने, उसका बहुत-सा रुपया बरबाद करा दिया। पुलिस की तेज़ निगरानी और गॉव वालों के विरोध से छबीले की ऊपरी आमदनी बन्द हो गई। दूसरे साल के अन्त तक वह क़रीब-क़रीब मुफ़लिस हो गया। पियारा और बलई के साथ किसी तरह निर्वाह करता जाता था।

जब दिन फिर से पतले पड़ने लगे, तब एक रात छोटे मिसिर की स्त्री, पियारा की ले भागने वाली चीज़े लेकर, एक अहीर के साथ बम्बई भाग गई। बलई को क्षणिकोन्माद हो गया। एक दिन सुबह तालाब मे डूब कर उन्होंने जान दे दी। छबीले और पियारा की हालत जब बद से बदतर हो गई तो एक दिन गॉव वालों ने उन्हे गॉव से निकल जाने के लिए मजबूर कर दिया। घाट के क़रीब एक झोंपड़ा डाल दिया गया। वहीं

दोनों रहने लगे।

+ + +

प्यारेलाल अपनी साधना मे लीन थे। जब अपनी समझ से छबीले को पछाड़ लेने योग्य बन चुके, तब एक बरसात की अँधेरी रात मे छुरा लेकर घर से निकले। रातों-रात शहर से चल कर वह गोमती के किनारे पहुँचे और बुड़हा घाट के पास नदी पार की। चलते-चलते वह अचानक ठिठक गये। यह वह जगह थी, जहाँ छबीले ने उनकी दुर्गति की थी। खून दूने जोश से खौलने लगा। वह आगे बढ़े कि हवा को चीरती हुई कहीं से तेज कराहने की आवाज उन्हे सुनाई दी। वह आगे बढ़ना चाहते थे, लेकिन वह आवाज, अजीब दर्द से भरी हुई, सन्नाटे को भेद कर, बार-बार उन तक पहुँचने लगी। वह अटकल से उसी ओर चले। वह आवाज उन्हे एक झोंपड़े के पास तक खींच लाई और फिर एक दम स्पष्ट और दारुण हो कर, एकाएक बन्द हो गई। झोंपड़ी के फड़के को लात मार कर बौछार की तरह वह भीतर दाखिल हो गये। मिट्टी के तेल की डिबिया के प्रकाश मे उन्होंने देखा, एक ओर पियारा बेहोश पड़ी है। खून और मांस के लोथड़ों के बीच एक नव-जात शिशु झोंपड़ो में अकेला पड़ा शब्द कर रहा था। एक ओर किसी चीज की भयानक दुर्गन्ध उठ रही थी। बाबी के आवलों से छबीले का बदन तिल-तिल सड़ कर बह रहा था।

स्तब्ध प्यारेलाल ने क्षण-भर यह दृश्य देखा: फिर घृणा

से एक ओर छुरा फेंक कर सोचने लगे आदमियत के नाते अब उन्हें क्या करना चाहिए !

चमेली

श्री सूर्यकांत त्रिपाठी 'निराला'

उतरता बैसाख। खलिहान में गेहूँ, जव, चना, सरसों मटर और अरहर की रासें लगी हुई हैं। गाँव के लोग मड़नी कर रहे हैं। कोई-कोई किसान, चमार-चमारिन की मदद से माड़ी हुई रास ओसा रहे है। धीमे-धीमे पछियाव चल रहा है। शाम पाँच का वक्त। सूरज इस दुनिया से मुँह फेरने को है। एक जगह, घने आम के पेड़ के नीचे, सब जगहों से ज्यादा लाँक रक्खी है। एक रास भी, माड़ी लगी हुई, एक अच्छा पलंग और एक चारपाई, चारपाई पर लट्ठ रक्खे एक सिपाही। बख्तावर सिंह थैली से तैयार किया रक्खा दोहरा निकाल रहा है। पलंग पर पटवारी, लाला शहनाई लाल श्रीवास्तव खेतों की पैदावार लिख रहे हैं, बहुत कुछ अन्दाज़न।

देखने पर मालूम देता है, यह ज़मींदार का खलिहान है। ज़मींदार के खलिहान की बगल में पटवारी के खेत की लाँक लगी है। ज़मींदार ने तीन बीघे का एक खेत पटवारी को दिया है। गाँव वाले जानते हैं—क्यों दिया है। फिर भी लाला शहनाई लाल सौ से ज्यादा दफे, जब गाँव आते हैं,

रास्ता चलते गाँव वालों को बुलाकर कहते हैं—"किसानों के अच्छे खेत से बीघा पीछे दो रुपये ज्यादा लगान उनके खेत पर लगाया गया है। "पुलिस और जमींदार अपने बाप को भी नहीं छोड़ते।"

लाला शहनाई लाल पैदावार लिखते हुए रह-रह कर, अपने खेत की लॉक देख लेते हैं, सन्तोष की साँस छोड़कर फिर लिखने लगते हैं। सुखलाल अपने गधे से समझौते की बात-चीत करता हुआ बग़ल के गलियारे से निकल गया। पुरवा की अदालत से लौटने वाले लोग, कन्धे पर अधारी डाले, एक के बाद दूसरे, चले गए, गम्भीर भाव से कुछ मनन करते हुए। लॉक की तरफ लपकते हुए भैंसे को भीखू चमार का नाती खेद ले गया।

सूरज डूबने को है। किरने ठंढी हो आई हैं। आम की डाल पर कोयल बोली। आँख उठा कर चमेली ने उस तरफ देखा। कोयल न देख पड़ी। लदे आमों की कतार दिखी। देख कर जैसे बड़े प्यार की चीज़ हो, कुछ देर तक अनमनी सी होकर, औंगी उठाकर फिर बैल हाँकने लगी। शरमा कर सर झुका लिया, जैसे सर उठाते वक्त सीना कुछ ज्यादा उठ गया हो।

बख्तावर सिंह उस की ओर देख रहा था, आँखों में जैसे मजबूत इरादा लिए हुए। पास के मड़नी वाले कोई कोई चले गए हैं, दूसरे कामों से। पटवारी शहनाई लाल भी चलने

वाले हैं। ज़मींदार के गोड़इत से घोड़िया कसवा रहे हैं। गाँव डेढ़ मील दूर है। रात को नदी नाले से होकर गुज़रते डरते हैं। सिपाही खलिहान के अहाते के बाहर तक छोड़ आने के लिए लट्ठ सँभाल कर बैठा है।

इसी समय लाला बनिया कन्धे पर दोहर रक्खे खलिहान में आए। चमेली की रास देखकर मुस्कराते हुए पूछा, 'यह रास कब ओसाई जायगी ?' फिर आप ही उसके ओसाए जाने का दिन सोच कर दूसरी रास की ओर बढ़े। पटवारी को देख कर राम-राम किया। पटवारी घोड़िया पर सवार थे। साथ में ज़मींदार का सिपाही। चमेली उसी तरह गर्दन झुकाए औगी लिए बैलों को चलाती रही।

सिपाही पटवारी को छोड़ कर लौटा। सूरज डूब चुका है। दूर, गाँव के दूसरी तरफ आसमान पर ढोरों की खुरी की धूल दिखाई दी। खलिहान कुछ सुनसान है। कुछ दूर एक मड़नी चल रही है। चमेली के नज़दीक के लोग, दिन रहते-रहते, बैलों को बाँधकर चारा-पानी कर आने के इरादे से गाँव गए हुए है। मुँह अँधेरे तक आ जायँगे—ताकने के लिए। तब तक दूसरी मड़नी वाले लाँक और रास देखे रहेंगे। ये सब अकेले आदमी हैं। कोई लड़का या लड़की किसी के घर है तो वह ढोर चराने गई है। घरवाली शाम तक भोजन पका रखती है। सवेरे का पकाया हुआ अगर रखा है तो गृहस्थी का दूसरा काम करती है, जैसे कभी सीला बीनती रही या बगीचे के आम

ताकती रही, या बैलों के चारा पानी का इंतज़ाम करती रही। दिन भर के चले-थके बैल जब आएँगे तो उनके आगे रखेगी।

बख्तावर सिंह चमेली के पास आकर खड़ा हुआ। एक दफ़ा इधर उधर देखा, जैसे सब की रक्षा कर रहा हो। फिर लाठी का गूला रास की बग़ल में दे मारा। खँखार कर पूछा—'तेरा बाप कहाँ है, चमेली ?'

हाथ की औंगी धीरे से बैल की पीठ पर मार कर, निगाह बैलों पर गड़ाते हुए, चमेली ने कहा—'लकड़ी काटने गया है।'

'लकड़ी काटने ?' बख्तावर ने हमदर्दी में तअज्जुब करते हुए कहा।

'हाँ', बेमन चमेली ने जवाब दिया।

'लादता है क्या ?'

'नही।'

'फिर ?'

'मजूरी करता है।'

'मजूरी करता है और इतना चलकर। हम कई मर्तबा कह चुके कि तू हमें दूसरा न समझ। हम से जहाँ तक होगा, हम तैयार हैं। तू उसे समझा। वह खरीदे तो गाँव के दस-पाँच बबूल हम दिलवा दें—आसामियों के, नहीं तो रुपया हम अपनी गाँठ से देंगे। वह चाहे तो लौट कर, माल बेच कर रुपया चुका सकता है। यह मजूरी छुट जायगी। हाँ, गाड़ी

का किराया भी न देना होगा। हम सरकारी गाड़ी दे देंगे।' बख्तावरसिंह भेद-भरी निगाह से चमेली को देख कर मुस्कराया।

इस कहने का कोई जवाब हो सकता है, चमेली की समझ मे न आया। वह चुपचाप बैल हाँकती गई। एक एक दफे गलियारे की तरफ देख लेती कि उसका बाप आ रहा है या नहीं।

बख्तावर सिंह ने इधर-उधर देखा और फिर अपनी लाठी का गूला रास पर रक्खा। बैलों के साथ चमेली के घूम कर आते ही कहा—'चमेली, तीसरी दफे कह रहा हूँ।'

चमेली कुछ न बोली। बैलों के साथ चक्कर घूमती हुई चली गई। बख्तावर वैसे ही खड़ा रहा। चमेली का मौन उसे बड़ा सुहावना मालूम दिया।

चमेली वैसी ही शांत, बैलों के साथ, फिर आई। अबके ठाकुर से न रहा गया। बढ़ कर चमेली का हाथ पकड़ लिया।

'महादेव भैया रे—ओ महादेव भैया!' चमेली ने आवाज़ दी।

चमेली देख चुकी थी कि महादेव मड़नी कर रहा है। वह कुछ दूर था।

'क्या है?' महादेव ने मदद के गले से पूछा।

'जल्दी आ', चमेली जैसे अपनी ज़ुबान पर ही उसे ले आई।

महादेव जल्दी से बढ़ा। चमेली की पुकार सुनते ही ठाकुर सनके।

महादेव जब चमेली के पास आया, तब ठाकुर चिल्लाने लगे—"दौड़ो गाँव वालो, महादेव चमेली की रास मे क्या कर रहा है।"

ठाकुर की आवाज बुलंद थी। गाँव की दीवारों से टकराई। गाँव और बाहर के लोगों ने सुना। कुछ दौड़े भी। महादेव को ठाकुर की आवाज़ से ही चमेली के साथ वाली हरकत मालूम हो गई।

'घबरा न' चमेली से कह कर महादेव ठाकुर की तरफ बढ़ा।

ठाकुर लाठी लिये थे। महादेव के हाथ मे थी सिर्फ औगी। लेकिन वह पट्ठा था और लड़ता था। ठाकुर के देह मे सिर्फ दाढ़ी और मूँछों के बाल थे और हाथ मे एक तेलवाई लाठी।

महादेव के आते ही ठाकुर ने वार किया। महादेव वार के साथ भीतर घुसा और कमर पकड़कर उठा कर ठाकुर को दे मारा। इसके बाद ठाकुर की बुरी हालत की। ठाकुर को कई जगह चोट आई।

अब तक गाँव के लोग पहुँच गए। मनराखन ने ठाकुर और महादेव को देखते हुए पूछा—'क्या हुआ ?'

सीतलदीन मनराखन के बाद पहुँचे। महादेव और

ठाकुर को देख कर ताअज्जुब मे आ मनराखन से पूछने लगे—
"क्या है ?'

माधो सुकुल पहुँचने वाले तीसरे थे। देखकर सीतलदीन और मनराखन से कहा—'इन्हें छुड़ाना चाहिए।'

बदलू कुम्हार पहुँचे। देख कर बोले—'जब मालिकों का यह हाल है, तब हमाना कैसा होगा !' और ताअज्जुब में भरे हुए दुःख में वही डूब कर रह गए।

महादेव ने अब तक हुब भर कर मार लिया था। रद्दे पर रद्दे और घूँसे पर घूँसे चलाये थे। मार कर गालियाँ देता हुआ, अपनी मड़नी की तरफ चला। गालियों में ही लोगों को समझा दिया कि माजरा क्या था।

चमेली अपनी जगह खड़ी थी। बैलों को खड़ा कर दिया था। वहीं से देख रही थी।

महादेव के चले जाने पर, सर झुकाए, हमदर्दी से ठाकुर बख्तावर सिंह को पकड़ कर गाँववाले अपने-अपने अँगोछे से उनकी गर्द झाड़ते रहे, और जो कुछ कहा, वह महादेव की तरफदारी में बिलकुल न था। फिर भी ठाकुर नाराज थे कि वक्त पर नहीं छुड़ाया। बैठे हुए, फटी निगाह से इधर-उधर देखते रहे। गर्द झाड़ कर लोग अँगोछे से हवा करने लगे। ठाकुर कुछ होश में आए, होश आने पर जोश आया। बोले—'हम बचाते थे सोचते थे, कि कौन हाथ छोड़े—कौन हाथ छोड़े, लेकिन साले सूद ने अपमान कर ही दिया।

अच्छा देख लिया जायगा, ठकुराइन ने दूध पिलाया है, तो—'

'तुम्हारी उसकी कोई जोड़ है, मालिक ?' सीतल ने ठाकुर को ठंडा करते हुए कहा, 'सेर और स्यार की बरनी ।'

ठाकुर कुछ और जोश में आए । बोले—'अब तुम्ही लोग देखोगे । और यह जो छोलहट चमेलिया है······खैर, देखा जायगा ।'

लोग चमेली के नाम से सन्न हो गए । ठाकुर की बात सही मालूम दी । सब लोग एक-दूसरे को देखते रहे ।

बात गॉव के चारों ओर फैल गई । चमेली का बाप दुखिया लकड़ी काट कर गॉव के किनारे आया कि सुना, 'खलिहान में आफत मची है । चमेली के बारे मे, ठाकुर बख्तावर सिंह को मारा है महादेव ने, ठाकुर पहले चिल्लाए थे कि रास मे महादेव और चमेलिया—'

एक दूसरे ने कहा—'मुँह अँधेरा था । अरे हॉ, कौन कहे, उतनी बड़ी बिटिया ।'

दुखिया सूख गया । सीधे खलिहान पहुॅचा । मालिकों के खलिहान के पास लोग इकट्ठा थे । वहीं गया । लोगों को जमींदार की तरफदारी करते देखा । गॉव मे भी जैसा सुना था, वह चमेली के खिलाफ था । मारे डर के कॉपते हुए दुखिया ने, सर पर बॅधा ॲगोछा उतार कर, ठाकुर के पैरों पर रख दिया । फिर हाथ जोड़ कर बोला—'मालिक, मेरा कोई कसूर नहीं है । दुखी रियाया हूॅ । किसी तरह जीता हूॅ तुम्हारी जूठी

रोटी तोड़ कर। मुझ पर नेक निगाह रक्खो। 'मर जाऊँगा नहीं तो, कहीं का न रहूँगा।'

गर्म साँस छोड़ कर बख्तावर बोले—'तेरी वह जुवंटा बिटिया समझती है; देस के धिंगरों को बुलाने के लिये रख छोड़ा है उसे घर में ? भतार को तो चबा गई ब्याह होते ही, इससे नहीं समझ में आया कि कैसी है ? बैठा क्यों नही दिया किसी के नीचे अब तक ?'

लोगों ने दुखी को पकड़ कर कहा—'तुम अभी जाओ। ठाकुर की तबियत ठीक नही है। बोलते है तो दम फूलता है।'

दुखी अपने खलिहान गया। चमेली बैलों को खड़ा किए चुपचाप खड़ी थी। यह पहला मौका था कि दुनिया अपनी असली सूरत मे उसकी निगाह के सामने आई थी। इस दुनिया को वह सच समझती थी। इस दुनिया के लोगों को सही भाव से उसने काका, दादा, भैया कहना सीखा था। बदले मे वैसे ही भाव उसे वह पाती आ रही थी। पर आज कैसा छल है। महादेव को वह भैया कहती थी, पर इस बात को कोई आज मानने के लिये तैयार नहीं !

चमेली को देखते ही दुखी ने कहा—'क्यों री, नाक काट ली न तूने ?'

'अँधेरे मे तुझे अपनी नाक न देख पड़े तो मेरा क्या कसूर है ?' चमेली ने बाप को जवाब दिया।

दुखी हैरान हो गया। कहा—'अरी, जमीन पर पैर

रख कर चल।

'तो तू क्या देखता है—किसी के सर पर पैर रख कर चलती हूँ, ज़मीदार के सिपाही की तरह ?'

दुखी डरा। फिर ज़मीदार के प्रताप का सहारा लेकर बोला—'अरी, आँख मे माड़ा न छाए—कुछ देख।'

'मै ख़ूब देखती हूँ। माड़ा छाया है लोगों की आँखों में और तेरी भी।' चमेली रुख़ बदल कर खड़ी हुई, दूसरी तरफ मुँह करके।

दुखी इस सचाई के सामने अपने आप दबा। फिर उसने गिरते सुर मे पूछा—'फिर बात क्या हुई, बता। लोग क्या कहते हैं।'

'लोग कहते हैं अपना सर। लोग उसी ठकुरवा की ठकुरसुहाती कहते है। बात यह हुई कि ठाकुर मुझ से कहता था कि तेरा बाप मजूरी क्यों करता है। हम बबूल दिला देंगे। दाम न हों तो अपने पास से दे देंगे। मालिकों की गाड़ी भी देंगे। काट कर कंपू से बेच लाए। दाम फिर—लकड़ी बेच कर—अदा कर दे।'

'तो फिर मालिक रियाया पर और कैसे दया करें ?'

'तेरा सर करे', चमेली की मा ने पीछे से कहा।

चमेली की माँ पास के दूसरे गाँव न्योते गई थी। महादेव को सूझा। ठाकुर को मार कर सीधे उस गाँव पहुँचा। महादेव की माँ भी वही थी। चमेली की माँ सुनते ही वहाँ से

चल दी। और समझी, ठाकुर की सरासर शरारत है। चमेली ठाकुर की पहले भी दो दफे की छेड़ माँ से कह चुकी थी।

ताव में भरी चमेली की माँ चमेली को साथ लेकर घर में चली गई। दुखी दीन भाव से मुस्के खोल कर वहीं अपने बैलों को बाँधने लगा।

ठाकुर के पास गाँव की करारी भीड़ जमा हुई। चौकीदार पलटू पासी ने रपोट कर देने के लिये कई मर्तबे कहा—गाँव के सब लोग जानते हैं। गवाही देंगे। थानेदार साहब के आने भर की देर है। मारे जूतों के महादेव के सर के बाल उड़ा दिये जायँगे। सज़ा तो बाद को होगी ही।

कुछ देर में ज़मींदार साहब आए। ठाकुर ज़मींदार साहब के भैयाचार थे। सूद्र ने पीट लिया, सब से बड़ी चिंता उन्हें यह थी। रिपोर्ट कर आने के लिये चौकीदार से कह कर ठाकुर को चारपाई पर गाँव उठवा लाए। फिर रातों रात कुल बातें मालूम कर मामले को मज़बूत करने की तरकीबें सोचने लगे।

(२)

इसी गाँव में एक पण्डित जी रहते हैं। नाम शिवदत्त त्रिपाठी। उम्र पचपन के उधर। पेशा अदालत—झूठी गवाही देना, किसी के नाम झूठे तमस्सुख लिखना-लिखवाना, मुकद्दमा लड़ना-लड़वाना, किसानों को अधिक सूद पर रुपये कर्ज़ देकर ब्याज खाते रहना। गाँव के समाज के एक मुखिया (सर-

कारी नहीं)। अपनी भी काफ़ी ज़मीन कर ली है, दूसरे दूसरे गाँवों मे हिस्सा लेकर। लड़का लखनऊ मे पढ़ाता है। घर के तीन भाई है। ये सब से बड़े है। इनसे छोटे नही रहे। इनकी बेवा है, लावारिस। यही मकान की मालकिन है। पं० शिवदत्तराम की धर्मपत्नी नही है। बेवा भयाहू मकान मे थी, उन्हें दोबारा ब्याह करने की ज़रूरत नही हुई। लड़का समझदार है, इसलिये चाची से और बाप से कम पटती है। पंडित जी के छोटे भाई अपनी स्त्री और बच्चों को लेकर कानपुर रहते है। घर मे एक बेवा बहन भी है। दो लड़कियाँ थी। वे अब ससुराल है।

पं० शिवदत्तराम का कहना है, सुबह सोकर उठने के बाद जब तक कुछ कमा न लो, पानी न पियो। गाँव वाले यह जानते है। शिवदत्तराम की आमदनी मे कभी रुकावट नहीं पड़ी। कोई न कोई हाज़िर हो जाता है।

सुबह का वक़्त है। शिवदत्तराम नहा कर पूजा कर रहे है। कुशासनी पर बैठे है, रामनामी ओढ़े। मस्तक पर चन्दन, चोटी सँवार कर बाँधी हुई। गम्भीर मुद्रा, सामने ठाकुर जी। चन्दन और फूल चढ़ाए हुए, ताँबे के बर्तन मे पानी दाईं ओर रक्खा हुआ। अंपटी से कभी कभी मुँह मे छोड़ लेते है। माला लिये हुए जप रहे है।

जगह, उन्ही की चौपाल, काठ के नक्काशीदार खम्भों की, पुरानी चालवाली। तिसाही दरवाज़ा, वैसा ही नक्काशीदार।

बाहर से देखने पर एक दफा निगाह रुक जाती है। पक्का मकान; बड़ा सहन, तीन-चार नीम के पेड़, पक्का कुआँ।

लतखोरे के एक बगल, चौपाल में, शिवदत्तराम जी जप रहे है। दूसरी बगल लड़का मनोहर बैठा उन्हें देख रहा है। इसी समय दुखिया आया। चौपाल पर चढ़ कर, भक्ति-भाव से माथा टेक, पंडित जी को प्रणाम किया। फिर उकड़ू बैठ कर, हाथ जोड़े हुए, दीनता की चितवन से देखता रहा। शिवदत्तराम जी और गम्भीर हो गए।

कुछ देर बाद, संपटी से पानी चीख कर बहुत ही ठंढे सुरों मे पूछा—'कैसे आए, दुखी ?'

पूछने के साथ हाथ की माला चलती गई। फिर होंठ भी हिलने लगे।

दुःखी ने कुछ कहने से पहले रीढ़ सीधी की, फिर एक तरफ गर्दन टेढ़ी करके टेट से कई पर्तो मे लपेटा एक रुपया निकाला और कुछ गम्भीरता से सामने रख कर वैसा ही दीन होकर बोला—'तिवारी भय्या, मै तो मरा अब !'

प्रसन्नता को दबाते हुए, दुःखी से हमदर्दी दिखाने के विचार से कुएँ के भीतर से जैसे तिवारी जी ने पूछा—'क्या हुआ, दुःखी ?'

'बड़ी आफ़त है, भय्या !'

मदद-सी करते हुए तिवारी जी ने पूछा—'बात तो बताओ, महतो ! तुम तो बस ....'

'पुलिस में रपोट हुई है।'

'किस बात की ?'

'अब क्या कहूँ भय्या।

'पुलिस के आगे तो कहोगे ?,

हाँ, पुलिस के आगे तो कहना ही होगा। तभी तो आया हूँ।'

'तो बताओ, क्या रपोट हुई है, और माजरा क्या है, और तुम्हारा क्या कहना है।'

'मेरा क्या कहना है, मालिक, मैं तो किसान आदमी हूँ। कहना तुम्हे है। जो कुछ है।' दुःखी ने गर्दन उठा कर अपने मुख्तारआम को जैसे देखा।

फटके से दरवाज़ा खोल कर मालकिन ने डाँटा—'इन्हे कुछ नहीं कहना। चल यहाँ से, बड़ा आया।'

फिर जेठ की तरफ मुँह करके पर्दे के विचार से कान के पास की धोती में हाथ लगाती हुई अपनाव से बोलीं—'तुम्हे नही जाना वहाँ, ज़िमीदार का मामला है। इस की बेटी चमेलिया को महदेवना के साथ दोख लगा है। सिपाही बख्तावर सिंह ने देखा था। महदेवना ने मारा है। ज़िमीदार ने रपोट लिखवाई है। कल थानेदार की अवाती है।'

कह कर, कोई बाहरी आदमी देखता न हो, इस विचार से सहन के इधर उधर झाँकने लगी। फिर देहरी पर पैर चढ़ा कर खड़ी हो गई।

पं० शिवदत्तराम जी ने हाथ बढ़ा कर रुपया उठाया, और टेंट में करके पुजापा समेटने लगे। पुत्र गंभीर भाव से देखता रहा।

'अच्छा, दुःखी अभी जाओ। अभी हमे काम है। दुपहर को बाग़ मे मिलो, हमारे खलिहान मे। ये सब एकांत की बाते हैं।' कह कर, पुजापा उठा कर, पंडित जी घर के भीतर चले। चलते समय हिम्मत बँधाते हुए कहा—'घबराओ मत।'

घर के भीतर साथ साथ उनकी भैहू भी गई। आँगन मे जाकर पंडित जी ने स्नेह की दृष्टि से भैहू को देखते हुए कहा—'औरत का कलेजा बेबात की बात में दहलता है। अरे, वहाँ जैसा मौका देखेंगे, कहेंगे। सूद है, घबराया है। इनसे ऐसे ही मौके पर रुपया मिलता है। आती लच्छिमी को कोई लात मारता है? वहाँ दो बातों में इसे समझाएँगे कि थानेदार आए है, बस एक रुपये से पार है। जितना दूध होगा, निकलेगा। रुपए थानेदार को काटते नही। नही तो मामला कौन है। घाव-पट्टी चढ़ गई है। हाथापाई के मामले मे थानेदार का कौनसा काम। सीधे अदालत खुली है। इस लोध को भरोसा है कि हमारी तरफ से चार कहेंगे। हमारा काम भी निकल रहा है। थानेदार से तो खुल्लमखुल्ला बातें होती है। यह अदालत थोड़े ही है कि जिमीदार के खिलाफ चढ़ कर गवाही देनी पड़ेगी। जैसा रुख़ देखेंगे, लोध को समझा देंगे कि ऐसा हो। मुमकिन

है, लोध के भी अच्छे गवाह हों। मामला लड़ जायगा तो बाहर से लड़ा देंगे। लेकिन यह कमज़ोर है।'

पंडित जी ने फिर स्नेह की दृष्टि से भैहू को देखा। भैहू अपनी बेवक़ूफ़ी के ख़याल से लजा कर बोलीं—'ऐ, इतना कौन जानता था? हमने कहा, कहीं बैठे बैठाए एक बला न गले लगे। हमारे कोई दूसरा बैठा है?'

फिर कुछ रोनी सूरत बना कर उसी आवाज़ मे बोलीं—'कोख का लड़का होता तो कोई एक बात न कहता। तुम्हारा भी होता तो...।'

फिर गंभीर होकर बोली—'दीदी का सुभाव अच्छा न था। तुमसे आज तक मैंने नहीं कहा। यह मनोहरा तुम्हारा लड़का नही है। दीदी मायके से ही बिगड़ी थी। कभी-कभी वह आता था उस पिछवाड़े वाले बाग मे।'

फिर शांत होकर बोली—'एक दिन पहर भर रात बीते दीदी बाहर निकली। मैंने कहा—क्या है कि हफ्ते मे एक रात इस तरह दीदी अकेली बहिरे जाती है। वे निकलीं कि पीछे से दबे पॉव मै भी चली। ऐन वक्त पर पकड़ ही तो लिया। वह तो भगा, दीदी पैरों पड़ने लगी। आज तक मैंने नहीं कहा। देखो न, तुम्हारा जैसा मुॅह थोड़े ही है। न बाप को पड़ा है, न मॉ को। उसी का जैसा मुॅह है। उजाली रात थी। मैंने अच्छी तरह देखा था उसे।'

इसी समय बहन बाग़ से आईं। भैहू हॅस कर दूसरी

दालान की तरफ चलीं।

पं० शिवदत्तराम भाव में डूबे हुए बोले—'बाग़ जल नहीं गया।'

बहन ने सोचा, छींटा उस पर है। उनकी दाल में काला था। बोलीं—'बाग़ क्यों जले, जले घर जहाँ रोज आग लगती है।'

भैहू बगुलिन की तरह ननद पर टूटी। दोनों हाथ फैला कर बोली—'अरी रॉड, अपना टेटर नही देखती, दूसरे की फूली देखती है। बहेतू कही की, सवेरे से जब देखो धोती उठाए बाहर भगी, कभी बाग़, कभी खेत, कभी इन के घर, कभी उन के घर। यह सब बहाने हैं। क्या मैं समझती नही?'

फिर जेठ की तरफ कनवाँ घूँघट काढ़ कर देखती हुई—'कहे देती हूँ तुम से, यह अब रहेंगी नही घर। खोदैया बिसाते से इसकी आसनाई है। सीधे तुम्हारे मुख मे लगाएँगी कालिख और होंगी मुसलमानिन।'

फिर धमाधम एक कोठरी को चलती हुई—'यह इतना बड़ा सीसा खोदैया के यहाँ से आया है—रोज़ मुँह देखती है।'

'सुनो, सुनो,' पं० शिवदत्तराम ने बुलाया।

'क्या?' बदल कर भैहू बोलीं, कुछ नज़र बचा कर देखती हुई।

'घर की बात घर ही मे रहने दो।' पं० शिवदत्तराम पूरे विश्वास से बोले—'कोई कुछ करे, दोख नही, धर्म न छोड़े।'

फिर भैहू से कहा—'जरा यहाँ तो आओ।'

कह कर बाहर दहलीज की तरफ चले। पीछे से भैहू चलीं, गम्भीर भाव से। दहलीज के एक सिरे पर खिड़की या जनाना रास्ता है, बाहर जाने को। वहीं गए। वहाँ, दरवाजा कुछ खोल कर, खड़े हो गए। भैहू भी जेठ से विश्वास की आँखे मिला कर खड़ी हो गई।

'सुनो,' पंडित जी ने आदर से कहा।

भैहू एक कदम बढ़कर बिलकुल सट कर खड़ी होगई।

'वह दवा जो तुम्हे दी थी, इसे भी पिला दो।' पंडित जी ने शंका और लापरवाही से कहा।

'तुम निरे वह हो,' जेठ की छाती पर धक्का मार कर भैहू ने कहा, 'ब्राह्मण ठाकुरों के यहाँ कोई बेवा वह दवा बिला खिलाए रक्खी भी जाती है। वह गावदी होगी जो रक्खेगा। एक आध के हमल रह जाता है, लापरवाही से। यह सब कर चुकी है।' कह कर स्वस्ति की साँस छोड़ी।

'तो ठीक है, चलो,' पीठ पर हाथ रख कर थपकियाँ देते हुए जेठ ने कहा और सिर ऊँचा उठाए, दरवाजे की तरफ बढ़ गये।

———

नेशनल सर्विस

[नरोत्तमप्रसाद नागर]

—:o:—

"कहिए पण्डित जी, आजकल कैसे चल रहा है ?"

"चल तो सब ठीक रहा है," पण्डित जी ने कहा—"लेकिन यह मेहतरानी का सत्याग्रह बरदाश्त नहीं होता।"

"मेहतरानी का सत्याग्रह !"

"हाँ, मेहतरानी का सत्याग्रह। पगार कई महीनों से मिली नही है। और सब के तकाज़े तो बरदाश्त हो जाते हैं, वे मान भी जाते है, लेकिन मेहतरानी का प्रसंग टेढ़ा है। आज सुबह से वह घर पर धरना दिए बैठी है।"

पत्र-कार्यालयों का—खासकर हिन्दी पत्र-कार्यालयों का—गुरुकुल के विद्यालंकारों और देशी विद्यापीठ के स्नातकों के लिए वही स्थान है, जो विधवाओं के लिए आश्रम का तथा भटके हुओं के लिए सराय का। 'मुझे और न तुझे ठौर' वाला मज़मून रहता है। विदेशी सरकार होने के वजह से सरकारी नौकरी मिलती नहीं। बाकी रह जाते है पत्र-कार्यालय तथा अन्य राष्ट्रीय संस्थाएँ। वही उन्हें लाद दिया जाता है और नवाब-बेमुल्क की तरह वे वहाँ गद्दीनशीन होते है।

शशि ऐसे ही एक कार्यालय में काम करता था। यतीन की मृत्यु पर उसने कालेज छोड़ कर घरवालों को नाराज़ और कालेज के प्रोफेसरों को निराश कर दिया था। घरवालों

को शशि से बहुत-बहुत आशाएँ थी और प्रोफ़ेसर उसे कालेज का नाम चमकाने वाला समझते थे। लेकिन हुआ कुछ नहीं। यतीन की मृत्यु पर कालेज में हड़ताल हुई और इस हड़ताल ने शशि को नेशनल सर्विस का उम्मीदवार बना दिया।

घर वाले इस पर बहुत नाराज़ हुए। उनकी नाराज़ी उस समय और भी बढ़ी जब शशि गिरफ्तार हुआ। घर-वालों को जब इसका पता चला तो उन्होंने बड़ी मेहनत से जमा की हुए राष्ट्रीय-अराष्ट्रीय, सभी प्रकार की, पुस्तकों को अग्नि के सुपुर्द कर दिया।

शशि को जब इसकी सूचना मिली तो उसे बड़ा दुःख हुआ। साथ ही उसे कुछ सन्तोष भी हुआ। उसने अपने मन में सोचा—"अच्छा हुआ जो मैंने घर छोड़ दिया। ऐसे लोगों के साथ मेरे लिये एक दिन भी टिकना सम्भव नहीं!"

जेल से छूटने के बाद राष्ट्रीयता का द्रुतगामी प्रसार देख शशि स्तब्ध रह गया। बीड़ी के बण्डलों से लेकर चरखा-सङ्घ-द्वारा प्रस्तुत खादी के दूध से सफ़ेद थानों तक—शायद ही कोई चीज़ बची हो जिस पर गांधी जी की 'छाप' न पड़ी हो।

तकली चलाते-चलाते शशि के कतिपय बन्धु कपड़े की मिलों का सञ्चालन करने लगे थे। एक ओर देश, राष्ट्र और त्याग-तपस्या के बल पर व्यवसाय करने वाले लोग थे और दूसरी ओर त्याग-तपस्या की भावनाओं से ओत-प्रोत राष्ट्रीय बेकार।

शशि भी इन्हीं राष्ट्रीय बेकारों में से एक था। सरकारी नौकरी वह कर नहीं सकता था। करना चाहता भी तो शायद मिलती नही। इधर-उधर भटकने के बाद उसने एक कार्यालय की शरण ग्रहण की।

'जागरण' नाम का पत्र इस कार्यालय से निकलता था। मेहतरानी के सत्याग्रह से परेशान पण्डित जी इस पत्र के प्रमुख सम्पादक थे। शशि था उनका सहकारी। साथ में दो विद्यालङ्कार भी थे। शशि को वे इस प्रकार देखते थे मानो वह किसी दूसरे लोक का जीव हो।

अनायास ही कार्यालय में दो ग्रुप बन गए थे। एक विद्यालङ्कारों का और दूसरे कालेज के विद्यार्थियों का। शशि अपने को बी० ए० लिखता था वे, अपने को वी० ए०—विद्या+अलंकार। पत्र-कार्यालय उनके लिए जैसे जन्मभूमि था और शशि जैसे एक बे-बुलाया मेहमान—एक दम ग़ैर जिन्स।

लेकिन एक समानता सब मे थी। पैसा न मिलने की वजह से सभी परेशान थे और कम-से-कम इतना तो चाहते ही थे कि यह परेशानी किसी तरह कम हो जाए। मतभेद उपस्थित होता था इस चाह को आगे बढ़ाने के समय।

पैसा मिल नहीं रहा था। असंतोष और परेशानियाँ बराबर बढ़ती जा रही थी। मेहतरानी के सत्याग्रह से, कम व बेश रूप में, सभी का पाला पड़ रहा था। आख़िर एक अल्टीमेटम लिखा गया। पर विद्यालङ्कारी ग्रुप ने अल्टीमेटम पर दस्तख़त करने से

इन्कार कर दिया। कहा—"पैसा मारा थोड़े ही जाता है। मिल जाएगा—आज न सही, कल।"

मतभेद की उपेक्षा कर आख़िर शशि ने इन लोगों के दस्तख़त भी खुद ही अल्टीमेटम पर बना दिए। अल्टीमेटम मालिक के पास भेज दिया गया।

तीसरे पहर सब को बुलाया गया। शशि सतर्क था और उसने इरादा कर लिया था कि विद्यालंकारी ग्रुप को बोलने न दिया जाएगा। लेकिन इसकी ज़रूरत न पड़ी। बोलने का काम मालिक महोदय ने स्वयं अपने लिए ही रिज़र्व कर लिया। खुद ही वह सवाल करते और खुद ही उसका जवाब भी दे लेते। इससे पहले कि कोई कुछ कहे, वह कहीं-का-कहीं बढ़ जाते।

दुनिया उन्होंने देखी थी। आदमी-आदमी के स्वभाव को पहचानते थे। स्वयं सिद्धहस्त पत्रकार भी थे। प्रभावपूर्ण भूमिका बाँधने के बाद उन्होंने पत्रकार-जीवन के अपने अनुभव सुनाने शुरू किए। उन्होंने बताया कि पैट्रोल और पैसों के अभाव में अनेक बार ज़मीन पर चलने से उन्हें कितनी-कितनी दिक़्क़तों का सामना करना पड़ा है। एकाध बार थर्ड क्लास में सफर करने की मजबूरी आ पड़ने पर किस बेचैनी के साथ उन्होंने रात काटी, यह भी जाना। पूरे न हो सकने वाले पत्नी के तकाज़ों की सूची भी शैतान की आँत से कम नहीं थी। उनके फ़ाकों का विवरण तो प्रगतिशील साहित्य की

अमूल्य चीज़ हो सकता।

"आप लोगों को विश्वास नहीं होगा," सिगार से धुआँ छोड़ते हुए मालिक महोदय कह रहे थे—"आज सुबह से मुझे भोजन नहीं मिला है। सिगार के धुएँ में भूख की वेदना को उड़ाने का प्रयत्न करता हूँ, लेकिन......!"

नब्ज पहचान कर वह बोल रहे थे। करुणाजनक प्रभाव उत्पन्न करने के बाद उन्हें गुदगुदाने की ज़रूरत महसूस हुई। कहने लगे—"आप लोग युवक हैं, ब्राह्मण हैं, ब्रह्मचारी हैं, ईश्वर से प्रार्थना कीजिए कि हमारे और आपके सब संकट दूर हो जाएँ।"

चलते-चलाते, शीघ्र ही पैसा दिलाने के आश्वासन के साथ साथ परेशानियों को दूर करने का भी उन्होंने एक उपाय बताया। कहा—"जब दिमाग़ अधिक परेशान हो तो रोटेरी मशीन के पास जाकर खड़े हो जाइए। मशीन की धड़धड़ में सारी परेशानियाँ डूब जाएँगी।"

"ठीक ही कहा है आपने" अन्त में शशि ने कहा—"दफ्तर में परेशानियों को डुबाने वाली धड़धड़ ही नहीं, और भी बहुत कुछ है। मेज़ है, कुरसी है, बिजली का पंखा है और आवाज देने पर रामजीवन ठण्डा पानी भी पिला जाता है। इन सब से भी बढ़कर यह कि दफ्तर में आने पर, आठ घंटे के लिए ही सही, मेहतरानी के सत्याग्रह से भी पीछा छूट जाता है।"

अपने एक मित्र के साथ शशि उन दिनों रहता था। मित्र का नाम था सुशील। नेशनल सर्विस—पी० सी० सी—में वह काम करते थे। त्याग-तपस्या और कम-ख़र्ची की कसौटी पर कसा-कसाया उन्हें वेतन मिलता था पेंतीस रुपया। इन पेंतीस रुपयों को लेकर रहना होता था—प्रान्तीय सरकार की राजधानी में।

मेहतरानी के सत्याग्रह और अल्टीमेटम को लेकर शशि और सुशील में काफी देर तक बातें होती रहीं। अन्त में शशि ने अपना निश्चय प्रकट किया—"जो भी हो, मैंने तय कर लिया है कि भविष्य में नौकरियाँ नहीं करूँगा। बेकार रह कर ही जो मुझ से हो सकेगा . . .।"

सुशील ने कुछ कहा नहीं। चुपचाप शशि के मुँह की ओर वह इस प्रकार देखते रहे मानों उसने कोई बहुत बड़ा काम किया हो। सुशील को इस तरह अपनी ओर ताकते देख शशि बीच में ही अवाक होकर रह गया।

सुशील विवाहित थे। अपनी पत्नी और दो बच्चों के साथ वह रहते थे। नेशनल सर्विस के पेंतीस रुपयों से गुजर हो नहीं पाती थी। अनेक बार इरादा कर चुके थे कि नौकरी छोड़ दें, लेकिन बीवी और बच्चों की ओर देखकर रह जाते थे। जिस काम को वह पूरा नहीं कर पाते थे, उसे शशि ने पूरा कर दिया—अपनी नौकरी छोड़ कर।

साथ में एक साहब और थे जो रहते थे। मिस्टर कान्त

सब उन्हें कहते थे। सोशलिस्ट वह थे। देशी विद्यापीठ के ग्रेजुएट यानी शास्त्री बनने में कसर इतनी रह गई थी कि अभी तक वह अपना थीसिस नहीं दे पाए थे। यह नहीं कि थीसिस वह तैयार नहीं कर सकते थे, वरन् यह कि थीसिस तैयार करने के लिए समय नहीं मिल पाता था।

समय की तंगी से मिस्टर कान्त सदा परेशान रहते थे। सोशलिस्ट वह थे और समाज को बदलने की स्कीमों में इतना व्यस्त वह रहते थे कि थीसिस तैयार करने के लिए समय नहीं मिल पाता था। मातृभूमि उनकी भारत थी और पितृभूमि रूस। ब्रिटेन से सम्बन्ध-विच्छेद कराने के बाद रूस और भारत का गठ-बन्धन कराने की फ़िक्र में वह रहते थे।

रात के आठ नौ बजे का समय होगा। नेशनल सर्विस से छुट्टी पाकर सुशील घर पर आगए थे। मिस्टर कान्त उनके पास बैठे थे। इधर उधर की बातें करने के बाद मिस्टर कान्त ने कहा—"भाभी से कहना, सुबह ही सुबह उठ कर जब वह अन्दर कमरे में जाएँ तो मुझे जगा दें।"

लगे हाथ यहाँ एक कामरेड का परिचय और दे दें। शून्यचित्त उसका नाम था। मिस्टर कान्त ही उसे कहीं से पकड़ लाए। नौकरी की खोज में देहात से भाग कर वह चला आया था। कई जगह काम करने पर भी पैसा उसे नहीं मिल सका था। कुछ दिन ट्रायल पर, वह काम करता और फिर निकाल दिया जाता। मिस्टर कान्त की एक दिन उससे मुठभेड़

होगई और पूंजीवाद के शोषण से उबारने के लिए उसे वह अपने साथ लेते आए।

तभी से शून्यचित्त भी इस घर का एक अंग बन गया! कह सुन कर एक जगह सात रुपये की नौकरी भी उसे दिला दी गई। विवाह उसका हो गया था। बीवी देहात में रहती थी और खुद यहाँ। साल छै महीने में एकाध चक्कर घर का लगा आता था। मजबूरियों ने उसे भी सामूहिक जीवन बिताने के लिए बाध्य कर दिया था।

सुबह-ही सुबह जगाने का काम कामरेड शून्यचित्त भी कर सकता था। लेकिन उस समय मिस्टर कान्त को शून्यचित्त का ध्यान नही आया। सुशील से वह बाते कर रहे थे और सुशील के सामने रहने पर भाभी का जितना ध्यान रह सकता था, उतना शून्यचित्त का नहीं।

सुबह-ही-सुबह अँधेरे-मुँह जगाने की बात सुनकर सुशील ने पूछा—"क्यों कल क्या बात है?"

"कुछ नहीं," मिस्टर कान्त ने कहा—"नवयुवकों का यहाँ एक ग्रुप संगठित करना है। उसी के लिए एक स्कीम बनानी है। समाज को बदलने के लिए कुछ-न-कुछ करना होगा ही।"

अगला दिन। साँझ का समय। भाभी अपने बच्चों को सँभालने मे लगी थी, शशि और सुशील बैठे बाते कर रहे थे तभी कांत ने बाहर से आकर कमरे मे प्रवेश किया। दिन-भर

के कार्य-क्रम के बारे में बातें करने के बाद सुशील ने कान्त से पूछा—"भाभी ने आपको जगा दिया ?"

"हाँ, उन्होंने तो जगा दिया था," मिस्टर कान्त ने कहा—मगर मैं जागा हुआ भी सोया पड़ा रहा।"

"तो फिर तुम्हे जगाना व्यर्थ गया।" सुशील ने कहा।

"हाँ, ऐसा ही समझिए," कान्त ने कहा—"भाभी ने कुछ जगाया ही इस तरह कि जागने से अधिक सोने को जी चाहता रहा। मुझे ऐसा लगा मानो भाभी बेगार काट रही हो। मेरे पास तक आईं और जाने क्या गुनगुनाकर चली गईं।"

भाभी ने दोबारा-तिबारा जगाने का कष्ट नहीं किया, इस लिए उस दिन का जागरण अधूरा ही पड़ा रह गया। मिस्टर कान्त को इससे बड़ी निराशा हुई कि भाभी मे उत्साह नाम की वस्तु ज़रा भी नहीं है। उन्होंने अनुभव किया कि युवकों का संगठन करने से पहले भाभी-सम्प्रदाय को—अर्थात् स्त्रियों को—चेतन करना होगा।

मिस्टर कान्त लगन के पक्के थे। भाभी-जागरण को पूरा करने के लिये रूस मे नारी-जागरण-सम्बन्धी अनेक पुस्तकों को जमा करना उन्होंने शुरू कर दिया। जहाँ भी जाते थे, स्त्रियों के जागरण को लेकर वह बातें करते थे और क़दम-कदम पर उन्हें समाज को बदलने की ज़रूरत महसूस होती थी।

एक दिन आकर शशि से वह कहने लगे—"कोई ऐसा काम बताइये जो औरतों के उपयुक्त हो।"

शशि ने पूछा—"क्यों, ऐसे काम की आपको क्या जरूरत पड़ गई ?"

कहने लगे—"आचार्य जी की पत्नी से मैंने कहा था कि आपके पति तो देश-समाज के लिए इतना कुछ करते है और आप कुछ भी नही करती है। आपको भी कुछ करना चाहिए। जब उन्होंने पूछा कि क्या करे तो मै कोई भी काम उन्हें नहीं बता सका। कुछ न कुछ तो करना होगा ही।"

\+ + + +

समाज को बदलने के लिये मिस्टर कांत के मस्तिष्क मे कोई-न-कोई स्कीम हर समय तैयार होती रहती थी। समय-असमय की चिन्ताओं से युक्त हो कर कुछ न-कुछ करने के लिये मिस्टर कांत सदा व्यग्र रहते थे। अड़चनों की भी उनके मार्ग मे कमी नही थी। आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक—किसी-न-किसी क्षेत्र की कोई-न-कोई बाधा उनके पीछे लगी ही रहती थी।

दिन-भर इधर-उधर घूमने के बाद रात के बारह-एक बजे कुछ लिखने-पढ़ने का उन्हें समय मिलता। रोशनी करने के लिए दीपशलाका नाम की वस्तु की खोज शुरू होती। जैसे-तैसे सब कुछ खोज-खाज कर जब काम करने बैठते तो मालूम होता, लालटेन का तेल अब धोखा देने जा रहा है। मजबूरन शून्य-चित्त अथवा भाभी को सुबह-ही-सुबह जगाने का आदेश देकर सो जाते।

सुबह होने पर जागे-सोये पड़े रहते। कैसे कुछ किया जाए, यही वह सोचते रहते। समाज को बदलने के लिए कुछ न कुछ करने की जो फिर धुन सवार होती तो एकाएक उठ खड़े होते। उतावली में हाथ--मुँह धोते, उल्टे-सीधे कपड़े बदन पर डाल बाहर निकल जाते। खाने-पीने का समय इधर-उधर घूमते बीत जाता। हैरान-परेशान तीसरे पहर के करीब बड़-बड़ाते हुए लौटते बाहर से—"क्या जीवन है हमारा। न खाने का समय मिलता है, न पीने का, न ही जीवन में कोई सरसता रह गई है।"

एक दिन, बाहर से लौटने के बाद, शशि के पास आ कर कहने लगे—"भाई शशि, कोई ऐसा उपाय बताइये जिससे जी बहले, जीवन में कुछ सरसता आए।"

"कहा तो आप से," अनेक बार दिए गए अपने परामर्श को शशि ने फिर दोहराया—"आप शादी कर लीजिए। इससे अधिक सस्ता, सुविधाजनक, निष्कण्टक नुस्खा आज के समाज के पास नहीं है।"

"इसीलिए तो समाज को बदलने की ज़रूरत है" मिस्टर कान्त ने कहा—"आप ही बताइए, ऐसी हालत में हम क्या करें। किसी के घर में घुस जाएँ, राह चलते किसी को पकड़ लें, अथवा अपने दिल पर 'किराये के लिए खाली है' की तख्ती लगा कर चलें।"

जीवन को सरस बनाने की योजनाओं को मिस्टर कान्त

कोई आकार-प्रकार दे भी न पाए थे कि इसी बीच, बराबर वाले मकान में, आकर बस गई मिस भट्टाचार्य । स्थानीय फिल्म-कम्पनी में वह काम करती थी। साथ में उसके एक खूसट संरक्षक और एक लड़का भी था। रोज़ सुबह के समय वह गाने-बजाने का रियाज़ करती थी, तबला और हार्मोनियम खड़कता था, घुंघरूओं की झंकार से वातावरण गूंज उठता था।

मिस्टर कान्त को मिस भट्टाचार्य जितनी अच्छी लगीं, उतना उसका गाना और तबला खड़कना नही। स्थिरचित्त होकर समाज को बदलने वाली योजनाओं को आगे बढ़ाना अब मिस्टर कान्त के लिए कठिन हो गया। हार्मोनियम और तबले का स्वर बाधा बन कर सामने आने लगा।

"यह तो बहुत गड़बड़ है," मिस्टर कान्त ने कहा—यही वक्त तो कुछ सोचने-समझने-करने का होता है और इसी वक्त यह गाना शुरू कर देती है। क्या किया जाए। एक चिट्ठी लिख कर ही मना कर दिया जाए इसे।"

"नहीं, मकान-मालिक से कहना चाहिए कि इन्हें मना कर दे" शशि ने कान्त के प्रस्ताव में संशोधन पेश करते हुए कहा—"मकान-मालिक को साफ-साफ बता देना चाहिए कि यदि किसी दिन कोई दुर्घटना हो गई तो हम जिम्मेदार न होंगे।"

मकान-मालिक से कहा गया तो वह मुस्करा कर रह

गया। इस बीच महाजन-महाव्याधि ने भी कुछ ज़ोर पकड़ा। पैसों के अभाव ने आटे-दाल का भाव बिगाड़ दिया और सप्ताह में तीन दिन चूल्हा ठण्डा रहने लगा। जब-तब मित्रों के यहाँ खाना शुरू किया, उधार का दौर भी चला और मेहतरानी के सत्याग्रह के अनेक रूप फिर-फिर सामने आने लगे।

"इस तरह कब तक चलेगा, मिस्टर कान्त ने कुछ खीज कर एक दिन शशि से कहा—"बेकार रह कर नहीं, वरन् बैंक मे कुछ बेलेंस रख कर......!"

अपनी बात को बीच मे ही अधूरा छोड़ मिस्टर कान्त ने फिर कहा—"भाई, शशि, चाहे जैसे हो, कहीं-न-कहीं से पैसों का प्रबन्ध करना ही होगा।"

किस-किस से कितना उधार लिया गया, बताते हुए मिस्टर कान्त ने कहा—"पड़ोसी तक को मै रुपयों केलिए लिख चुका हूँ कि एक पड़ोसी के नाते आपको मेरी मदद करनी चाहिए। हम से तो यह मिस भट्टाचार्य अच्छी है जो नाच-गा कर..."

"तो तुम्हारे पत्र का उन्होंने क्या उत्तर दिया ?" बीच मे बात काट कर शशि ने पूछा।

"यही कि हम खुद परदेसी है। हम आपकी क्या मदद कर सकते हैं।" मिस्टर कान्त ने कहा।

जीवन की नीरसता फिर उभर कर आने लगी। बड़ा

सूना-सूना सा लगता। इधर कुछ दिनों से, मिस भट्टाचार्य का रियाज़ भी बंद हो गया था। हम में किसी का इस ओर ध्यान ही नहीं गया था। मिस्टर कान्त ने सब से पहले इस ओर ध्यान दिया। कहने लगे—"मिस भट्टाचार्य के आने से जीवन में कुछ सरसता आई थी। वह भी बंद हो गई, न जाने क्या बात है ?"

बाद में पता चला कि वह बीमार है। फिर वह दिन भी आया जब उसकी नौकरी छूटने और सामान लदने की खबर सुनी। वह कम्पनी ही फेल होगई थी जिसमें मिस भट्टाचार्य काम करती थीं। दिन-भर गायब रहने के बाद मिस्टर कान्त ने सब बातों का पता लगाया कि किस प्रकार कम्पनी का रुपया रास रंग में बरबाद किया गया और किस प्रकार ये लोग मारे गये जो उस कम्पनी में काम करते थे।

मिस भट्टाचार्य भी उन्हीं में से एक थी। कम्पनी के अभिनेता-अभिनेत्रियों को जमा करके मिस्टर कान्त ने एक सभा भी की। कान्त के साथ उस सभा में शशि भी गया। अभिनेत्रियों की ओर लक्ष्य कर मिस्टर कान्त पूंजीवादी दोहण और शोषण की व्यापकता का दिग्दर्शन करा रहे थे और वे कान्त को इस दृष्टि से देख रही थीं मानो वह..।

उस दिन मिस्टर कान्त दिन-भर बाहर रहे। अभिनेत्रियों को यूनियन में संगठित करने के लिए कैनवेसिंग करते रहे। रात को बारह बजे के क़रीब घर लौटे। आते ही अपने

कागज़ों को उल्टा-पल्टा। फिर शून्यचित्त को पुकारा—" उ कागज़ कहाँ गया ?"

"यार बहुत गड़बड़ है। किसी चीज का कुछ ता नहीं चलता !" मिस्टर कान्त ने कहा और फिर जैसे सब भूल कर पहुँच गए सुशील के कमरे में।

सुशील ने पूछा—"कहो, आज कहाँ-कहाँ हो आए ?"

"अच्छा, आप सो रहे है !" सुशील के प्रश्न का उत्तर न दे, दूसरा प्रसंग शुरू करते हुए मिस्टर कान्त ने चकित स्वर में कहा—"और भाभी भी यहीं है। एक दिन रात को आकर मैं देखूँगा कि आप लोग कैसे सोते हैं।"

"इसमे क्या है। यह तो आप अभी देख सकते है", अपने संकोच को सहज-स्वाभाविक रूप देने का प्रयत्न करते हुए सुशील ने कहा।

"नहीं, रात को लालटेन लाकर मै खुद अपनी आँखों से देखूँगा कि आप लोग कैसे सोते है।"

इसके बाद सुशील ने मास्टर की तरह बताना शुरू किया—"आधे से ज्यादह पलंग बच्चे घेर लेते हैं, इधर तुम्हारी भाभी सोती है और मै", आड़े-तिरछे होकर अपने सोने के स्थान, गुञ्जायश और दिशा बताते हुए सुशील ने कहा—"मै इतने में आजाता हूँ।"

\+ + + +

भाभी के दो बच्चे है। दोनों लड़के। एक तीन-चार साल

का, दूसरा दस-बारह महीने का। मिस्टर कान्त दोनों को खिलाते है—छोटे को अधिक। खिलाते खिलाते जब थक जाते है अथवा खिलाते-खिलाते, भूली बात की तरह समाज को बदलने की किसी योजना का कोई सूत्र जब याद आजाता है तो उठ खड़े होते है और भाभी के बड़े लड़के को पुकारते है—"आनन्द कहाँ गया ?"

"क्यों; बाहर गया है ?" प्रश्नसूचक दृष्टि से भाभी कान्त की ओर देखने लगती है।

"कुछ नहीं," मिस्टर कान्त कहते हैं—"इसे नही खिलाता।"

भाभी मुस्करा कर छोटे बच्चे को मिस्टर कान्त की गोदी से ले लेती है।

इधर वातावरण में फिर कुछ खिचाव-सा दिखाई पड़ रहा है। दिखाई क्या पड़ रहा है, बलिक महसूस कया जा रहा है। शून्यचित्त ने सब से पहले इसे प्रकट किया। आकर शशि से कहा—"सुशील बाबू मुझ से नाराज़ हैं। भाभी भी मुझ से नहीं बोलती। कहते हैं अपना और कान्त बाबू का खाना अलग बनाया करो। मकान बदलने को भी कहते हैं।"

"हाँ, मकान बदलने को भी कहते हैं", "शशि ने कहा—"यह तो हम सभी चाहते हैं कि अलग अलग रहें। लेकिन......?"

"लेकिन मेरा क्या होगा ?" शून्यचित्त ने बीच में

ही बात काट कर कहा और नोची गरदन कर ५ कुरेदने लगा।

इस आशा के सहारे सब ने सामूहिक जीवन अपनाया कि एक दिन आएगा जब सब अपना अपना घर लेकर अलग अलग रहेंगे। महीनों से अलग रहने की कोशिश कर रहे थे, मकान बदलने का प्रसंग भी जब तब उठता रहता था, मगर मकान बदल नहीं पाते थे।

इस बार सामूहिक जीवन पर जो खिंचाव पड़ा था वह पहले से कहीं अधिक तेज़ था। शून्यचित्त की बातें सुनने के बाद शशि ने सुशील से बातें की।

"कान्त की और आपकी बात और है," सुशील ने कहा—"लेकिन यह शून्यचित्त भी वाइफ के साथ मज़ाक करता है। पास आकर पलंग पर बैठ जाता है। मैं यह बरदाश्त नहीं कर सकता?"

सामूहिक जीवन के दिन क़रीब आ लगे थे—कहें कि खत्म हो चुके थे। पहली को मकान छोड़ने का पक्का तय कर दिया था। लेकिन इस इरादे को अनायास ही बदल देना पड़ा।

एक दिन शशि बाहर लौटा तो उसने देखा मिस्टर कान्त और सुशील किसी बात को लेकर उद्विग्न हो उठे हैं। उनकी मुख-मुद्रा देखते ही शशि का माथा ठनका। मन में सोचा—"कहीं शून्यचित्त ने भाभी के साथ·····?"

निकट पहुँचने पर सुशील ने शशि के हाथ में एक

कागज दे दिया। शशि ने उसे देखा और वह भी उद्विग्न हो उठा। उसने कहा—"अरे, उसका इतना साहस!"

वह कागज मकान-मालिक की ओर से नोटिस था—पहली से मकान छोड़ दो।

"नही, यह नहीं हो सकता?" सुशील ने कहा और मिस्टर कान्त के मुँह की ओर देखने लगे?

"हाँ, यह कभी नही होगा," मिस्टर कान्त ने कहा—"अब हम किराया भी नही देंगे और इसी मकान मे रहेगे। उसे क्या हक है कि·· ···!"

यह सुन कर सब से अधिक प्रसन्नता हुई शान्यचित्त को। उसे ऐसा प्रतीत हुआ मानो उसके सिर पर से संकट टल गया हो। मन ही मन उसने तय किया: भाभी से अब वह कभी मजाक नही करेगा।

—:०:—

खेल, तमाशा और व्यंग

[नरोतम प्रसाद नागर]

"बनारस वाली भाग गई!"

श्रीमती जी आज-कल नही है और बहुत दिनों के बाद, अस्त-व्यस्त जीवन बिताने तथा उल्टी-सीधी बाते सोचने का अवसर मिला है। श्रीमती जी जब तक रही, घड़ी की टिक-टिक की तरह। यह जीवन बँधी गति से चलता रहा। समय

पर खाना, समय पर सोना—गरज यह कि समय पर ही सब कुछ होता था। नपे-तुले जीवन क्रम में ज़रा व्यतिक्रम होता नहीं कि श्रीमती जी का माथा ठनक उठता।

"तुम्हारा क्या है," झुँझला कर श्रीमती जी कहती—"तुम तो बीमार बन कर मज़े से चारपाई पर पड़ रहोगे। मुसीबत तो मेरी है जो......!"

मायके के लिए विदा होते समय जितनी अधिक हिदायतें श्रीमती जी दे गई थीं, उतना ही अधिक उनका व्यतिक्रम शुरू हुआ। अब न सोने का ठीक था, न जागने का, न खाने का और न पहनने का। मन ही मन यह सोच कर प्रसन्न होता कि यदि श्रीमती जी इस समय आकर देखें तो ..!

कभी-कभी यह प्रसन्नता आशंका में भी परिवर्तित हो हो उठती। सोचने लगता सपने में भी यदि श्रीमती जी को यह दिखाई पड़ गया कि मैंने चारपाई थाम ली है तो तुरन्त दौड़ी चली आएँगी। मुझ से विवाह न कर श्रीमती जी को किसी अस्पताल में नर्स बनकर जीवन बिताना चाहिए था।

लेकिन इस समय रात के दो बजे के करीब, श्रीमती जी की नहीं, वरन् याद आ रही है बनारस वाली की। न जाने मस्तिष्क की कौनसी अचेतन तह में से निकल कर गूंज उठा है यह वाक्य—"बनारस वाली भाग गई।"

स्मृति-पटल पर अंकित धुँधले चित्र आज उभर आए है।

वह सरापा लचक थी। चलने-फिरने मे लचक, बातचीत

मे लचक। स्वर अपवाद रूप से सुन्दर और कामोत्तेजक । बड़ी चंचल। छरहरा बदन और साँवला रंग। आकृति कोई विशेष सुन्दर नही। उसका समस्त आकर्षण उसकी लचक और कामोत्तेजक स्वर मे था।

वह चलती थी तो सैंकड़ों बल खाती हुई। लगता था कि उसकी दुबली-पतली टाँगे उसके दुबले-पतले शरीर का भार सम्हाल नही पा रही हैं। चुरमुर कर छुहारा और अमचूर हुए हृदय रिमार्क कसते—"यह क्या अटेरन-चाल चलना सीखी है !"

"मुँह तो देखो जैसे कुल्हिया हो," रिमार्कों मे और भी वृद्धि होती—"और उसमे जुबान समायी है गज़ भर की। पता नही, लौंडों के साथ क्या-क्या फुसफुस किया करती है।"

फिर हम पर ललकार पड़ती—"चले कि नहीं इधर, जब देखो उसी के पास घुसे रहते हैं। इतने बड़े होगए, मगर...।"

भाग्य की वह खोटी थी। अपने लिए ही नही, दूसरों के लिए भी। भाग्य के इस खोटेपन का पता चला उसके विवाहित होने पर।

माता-पिता ने अच्छा घर देख कर ही उसे व्याहा था। घर भी अच्छा था और लड़का भी। रेशमी कपड़ो की दूकान मजे से चल रही थी।

पर वह मनहूस ऐसी आई कि द्विरागमन होते न-होते लड़के को ही खा गई। लड़के की माँ छाती पीट कर रो उठी। जवान-जवान लड़के का गहरा दाग़ था। लेकिन उसकी—बनारस

वाली की—आँखों से एक आँसू तक न निकला। चुपचाप
हाथों की चूड़ियाँ तुड़वा, माँग का सिंदूर पुछवा, अपने कमरे
जाकर पड़ रही। न हिली, न डुली। मोहल्ले भर की औरतें
के लिए आयीं, रोते-रोते और आँसू पोंछते पोंछते उनकी
के पल्ले तर हो गए, पर उसकी सूखी आँखों में नमी
दिखाई दी।

"हाय राम, यह कैसी बहू है जो...!" पड़ोसिनें
शुरू करती और फिर, कहते-कहते, दाँतों तले जीभ काट
रह जाती।

फिर दुकान में घाटा आया। घर में चोरी भी हुई।

उसके पास निज के काफी गहने-पत्ते थे। चोर आए, घर की सब चीज़ें उठा ले गए, पर उसके गहने-पत्ते बच गए।

लेकिन नहीं, उसके पास फिर भी कुछ न रहा। घर ने उसे घेरा और घेर कर सब कुछ हथिया लिया। उसके पास कुछ भी नहीं रहने दिया गया।

घर में कितने ही देवर थे। ब्याहे और बे-ब्याहे। उनके लिए वह एक खिलौना थी। वे उस से खेलते थे और खेलना चाहते थे। आँखें उठा कर वह एक बार उनकी ओर देखती और फिर मन मसोस कर रह जाती।

× × × ×

कुछ याद नहीं पड़ता कि क्यों, पर वह मेरठ आई थी। तभी उसे देखा-जाना।

उसके पास घंटों बैठे रहते। जी नहीं भरता। बोलती तो सुना करते, चलती तो देखा करते।

अपना, अपने विवाह और पति का, देवर-देवरानी और सास-ननद का जिक्र कर अन्त में कहती—"मै अपनी एक किताब लिखूँगी।"

"हाँ-हाँ, लिखो न, बड़ी अच्छी किताब होगी तुम्हारी।" मैं कहता।

"नही, तुम लेखक हो, तुम्ही लिखना।"

कुछ देर रुक कर फिर कहती—"लिखोगे न ?"

"हाँ।"

"जरूर...?"

"हाँ जरूर...लेकिन मैं सोचता हूँ. ।"

"क्या सोचते हो तुम ?" बीच मे ही बात काट कर वह कहती।

"यही कि तुम सचमुच मे एक जीती-जागती किताब हो। तुम्हें देख कर लिखने को नही, पढ़ने को ।"

"चलो हटो, मजाक करोगे तो मैं तुमसे नहीं बोलने की।

कहना नही होगा कि ऐसा गजब नही हो पाता था।

एक दिन की बात है। देखा कि वह अकेली कमरे मे बैठी है। कुछ उद्विग्न-सी है और आँखों मे आँसू भरे हैं।

"अरे, यह क्या है ?"

मेरी आवाज सुन वह कुछ चौंकी। फिर जल्दी से उठ

खड़ी हुई और कमरे से बाहर जाने लगी।

"सुनो तो!"

मेरी आवाज़ सुन वह रुकी, एक क्षण मेरी आँखों ओर देखा, फिर मेरी तरफ बढ़ी—बढ़ती ही आई। सट क खड़ी हो गई। बोली—"यह लो, मैं आगई।"

"हाँ, तुम आगई," मैंने कहा और फिर कहते-कहते गया। उसकी आँखों के घनीभूत शून्य में मैं जैसे खोया रहा था।

सहसा मैं चौंक उठा। उसके दोनों हाथ मेरे कधों क स्पर्श कर रहे थे।

"अरे नही...नही..!" उसके दोनों हाथ अपने कंधे हटाते हुए मैंने कहा—"नहीं...नही...!"

एक क्षण उसने मेरे मुँह की ओर देखा। फिर चली गई। कमरे में मेरे मुँह से निकले शब्द गूंजते रहे—"नहीं... नही...नहीं...!"

उसका बोलना-चालना अब बहुत कम हो गया। वह मुझे देखती और कतरा कर निकल जाती।

× × × ×

रात के दस बजे होंगे। अपने कमरे में मैं था और श्री थीं। विवाह हुए अभी अधिक दिन नही हुए थे। श्री उन दिनों ज़ोरों पर थी। पति को अपना बना कर रखने के अनेक नुस्खे न जाने कहाँ कहाँ से सीख कर आई थी। मैं भी कम नहीं था। सोचता

था, यदि श्री को अभी से दाब कर नही रखा तो फिर...!

हाँ तो श्री विद्रोह पर उतरी थीं और मैं हिंसा पर। शब्द-प्रहार को श्री व्यर्थ सिद्ध कर चुकी थीं। पाद-प्रहार की बात मैं सोच रहा था। सोच क्या रहा था, कर चुका था।

सहसा किसी के थपथपाने की आवाज़ आई।

"कौन है? मैंने झुँझला कर कहा।

"दरवाज़ा खोलो!"

बनारस वाली की आवाज़ थी। मैंने दरवाजा खोल दिया।

"इस वक्त यहाँ कैसे?"

"अभी बताती हूँ। मैं नहीं जानती थी कि तुम...।"

"हाँ तो क्या नहीं जानती थीं तुम!" बीच में ही बात काट कर किंचित तेज़ स्वर मे मैंने कहा।

"कुछ नहीं," नम्र पड़ कर उसने कहा—"बात यह है कि कल मैं जा रही हूँ। तुम से एक बात कहना चाहती हूँ।"

मैं चुप रहा।

"बात नहीं," कुछ रुक कर उसने कहा—"तुम से मैं एक वचन लेना चाहती हूँ। कहो, उसे पूरा करोगे?"

मैं ने स्वीकृति दे दी।

"तो वचन दो कि तुम इन्हें भविष्य में नहीं मारोगे।" संकेत करते हुए उस ने कहा।

मैं अब चुप था।

"मेरा तुम से यही प्रथम और अन्तिम अनुरोध है,"

कुछ तथा रुक कर उसने फिर कहा—"स्वीकार न करोगे मेरी आत्मा को चैन नहीं पड़ेगा।"

भर्राये हुए गले से मैंने वचन दे दिया। दूसरे दिन चली गई।

× × × ×

एक वर्ष बाद।

तय हुआ कि इस बार बनारस का ट्रिप लगाया जाय। मैं था और भाई साहब थे। विश्वनाथ जी का दर्शन करने के लिए साथ में नानी भी हो ली।

पर यहाँ हम भाई साहब का कुछ परिचय दे दें।

भाई साहब बड़े हैं। डाँटने-डपटने का उन्हें पूरा अधिकार है और एक दिन था जब वह इस अधिकार का कस कर प्रयोग करते थे। बड़प्पन की लाठी घुमाना उनका काम था और अपने पास तक किसी को नहीं फटकने देते थे। कहते—"जाओ, उधर जा कर खेलो। बड़ों के बीच तुम्हारा कोई काम नहीं।"

आज भी मैं उनके पास जाता, उनका बड़प्पन उभर कर सामने आता। वह मुझे अपने से दूर रखने का प्रयत्न करते और मैं लुक-छिप कर, उनके चारों ओर मँडराया करता। साँझ को, कपड़े-लत्ते से लैस हो कर जब वह बाहर जाते तो एकटक दूर तक, देखता रहता। फिर सोचता—"कहाँ जाते हैं यह ?"

इस प्रश्न का कोई उत्तर न था भाभियों के पास जो पहुचता। उनकी आँखें भी जैसे इसी प्रश्न को दोहराती मिलती—"कहाँ जाते हैं यह ?"

भाई साहब के कई मित्र थे। सभी विवाहित। सब की पत्नियाँ मिल कर बैठतीं और यह निश्चय करने का प्रयत्न करतीं कि किसके पति ने किसको बिगाड़ा है। एक कहती—"पहले तो 'वे' ऐसे न थे। जब से उन्होंने तुम्हारे 'उनका' साथ पकड़ा, तभी से...!"

"जी हाँ, बड़े दूध-पीते बच्चे हैं न, तुम्हारे 'वह' जो सहज में ही उन्हें कोई बहका लेगा। अगर ऐसा ही है तो क्यों नहीं सम्भाल कर रखती हो उन्हें...!"

"लेकिन वे जाते कहाँ हैं ?" अन्त में सारा वाद-विवाद इस एक प्रश्न पर आकर केन्द्रित हो जाता।

"तुम्ही जाकर कुछ पता लगाओ," और कोई मार्ग न देख भाभी ने मुझ से कहा—"चुपचाप जाकर देखना, कहाँ जाते है ये लोग ?"

भाई साहब को जब इसका पता चला तो बहुत नाराज़ हुए। कहने लगे—"हम ऐसी जगह जाते हैं जहाँ तुम्हारे फरिश्ते भी नहीं पहुँच सकते !"

बात सही थी। लेकिन इसी बीच एक ऐसी घटना हुई जिस ने मुझे बड़े भाई साहब के दल में पहुँचा दिया। वह घटना थी मेरा विवाह। स्वयं भाई साहब ने लड़की को पसन्द

किया था।

श्री के आते ही भाभियों ने उसे घेरा। बहुत कुछ मायके से सीख कर आई थी। जो कसर रह गई थी भाभियों ने पूरा कर दिया।

"देखती हो न हमारे उनको। साँझ को जाते हैं औ आधी रात के बाद लौटते हैं। अभी से देख-भाल नहीं करे तो फिर देवर जी भी...।"

खटपट शुरू हुई और मैं भाई साहब के तथा श्री भाभियों के दल में जा मिली। भाई साहब और मेरे बीच 'बड़प्पन' की जो दो दीवार थी वह टूट कर गिर गई। डाँटते-डपटते वह अब भी हैं, इसका पूरा अधिकार उन्हें है, लेकिन यह अधिकार मिस बाजपेयी, श्यामा, चन्द्रा, मोहिनी या माधवी अथवा आशालता के झिलमिलाते ईयरिंग को देखने और देखते रहने में कोई बाधा नहीं देता। वर्जित और अवर्जित, सभी प्रदेशों का पासपोर्ट बा-आसानी मिल जाता है।

× × × ×

हाँ तो बनारस में हम एक धर्मशाला में ठहरे—मैं, बड़े भाई साहब और नानी। मेरा उद्देश्य था घूमना—नयी नयी चीजों के साथ-साथ नयी-नयी जगहों को देखना, नानी का उद्देश्य था विश्वनाथ के दर्शन करना, बड़े भाई साहब थे पथ-प्रदर्शन करने के लिए।

धर्मशाला क्या थी, अन्तर्प्रांतीय जीव-जन्तुओं का

घरौंदा था। पास के कमरे मे दो युवक और तीन युवतियाँ टिकी थीं। खूब हा-हा-ही-ही रहती थी, पर किवाड़ बन्द रहते। मानो छुप कर हँसने-खेलने का अवसर उन्हें पहली बार ही मिला है। लेकिन उनकी यह स्वच्छंदता उन्हीं तक सीमित थी। कोई दूसरा पास पहुँचता तो कतरा कर रह जाते।

हमारे आकर्षण के लिए उनका कतराना ही पर्याप्त था।

धर्मशाला के पण्डित जी बहुत घूर-घूर कर उन्हें देखते थे। उन पर कुछ नाराज़ भी थे। और सब कुछ तो बरदाश्त कर लेते थे, पर युवतियों का सिगरेट पीना और दिन भर किवाड़ बंद किए अन्दर पड़े रहना उन के लिए नाकाबिले बरदाश्त था। कहते—"इन सालों से आज ही कोठरी खाली कराता हूँ।"

लेकिन जब तक हम रहे, कोठरी खाली नहीं हुई।

सामने के कमरे में एक रईस-पुत्र थे और बड़ी दूर से आए थे। उन की अस्वस्थ वृद्ध माता ने काशी मे ही प्राण त्यागने की इच्छा प्रकट की थी इसलिए।

उन की मातृ-भक्ति धर्मशाला-निवासियों की चर्चा और व्यस्तता का विषय बनी हुई थी।

दिन बड़े मज़े मे बीत रहे थे। सब से अधिक आकर्षण था उन युवक-युवतियों को कतराते देखने और इसके लिए बराबर अवसरों का निर्माण करते रहने में। यह चीज़ हमारे लिए एक व्यसन मे परिणत हो गई।

विश्वनाथ जी के मन्दिर में घाट पर, बाज़ार और सिनेमा में—उन्हें हम पकड़ ही लेते थे।

एक दिन शाम के समय नानी ने कहा—"जाकर एक सुराही तो ले आओ।"

सुराही लेने के लिए सौंदर्य के हाट को पार करना पड़ा। सही सलामत गुज़र गए। लौटे तो भाई-साहब ने इधर-उधर देखा और बोले—"चलते हो?"

"चलो" मैंने कहा—"शरबते दीदार के लिए सुराही भी पास में है।"

इसी मनोरंजक व्यस्तता और निरे आनन्द के बीच यकायक ध्यान आया—बनारस वाली को पकड़े।

इधर इरादा किया और उधर चल पड़े। बनारस वाली के लिए बनारस की गलियों की खाक छानी—खूब छानी, यहाँ से वहाँ और वहाँ से यहाँ। कई घण्टे बीत गए, पर बनारस की गलियों की भुल-भुलैयाँ मे मकान का पता नही चला। एक गली को पार करके जो निकले तो शाही मस्जिद दिखाई पड़ी और देखा कि धर्मशाला की रौनक - वे युवक और युवतियाँ—मीनार पर चढ़ने की तैयारी कर रहे है।

बनारस वाली दिमाग़ के किसी पिछले कोने में जा पड़ी।

× × × ×

बनारस से लौटने के कई मास बाद—

"कुछ सुना तुम ने ?"

"क्यों, क्या हुआ ?"

"जिसके पीछे फिरते थे वह भाग गई।"

"कौन ?"

"बनारस वाली।"

"बनारस वाली...?"

"हाँ बनारस वाली," भाई साहब ने कहा—"सुनते हैं, किसी कहार के साथ भागी है।"

कहार के साथ भाग गई—एक-एक करके सब चित्र आँखो के सामने घूम गए। उसकी बाते, किताब लिखने का उसका अनुरोध, उस दिन की विचित्र भावपूर्ण आँखे, स्त्री पर कभी हाथ न उठाने का आदेश।

मैं उद्विग्न-सा हो चला।

"भाई साहब अलमारी के पास गए। अलमारी को खोला और दो गिलासों मे ह्विसकी उँडेली।

"यह लो," मेरी ओर एक गिलास बढ़ाते हुए उन्होंने कहा।

यत्रवत् गिलास मैंने ले लिया और उसे गले के उतार गया।

इतने मे देखा, भाई साहब चैस्टर और टोपी लिए खड़े हैं।

चैस्टर और टोपी मैंने उनके हाथ से ले ली और बदन पर डाल उनके साथ चल पड़ा।

"था वह बड़ा खुशकिस्मत।"

"किस की बात कह रहे हो?"

"उसी कहार की।"

"कहार की?"

"हाँ, अच्छी चीज़ पर उसने हाथ मारा।"

वह भी चुप।

मैं भी चुप।

वाञ्छनीय स्थान पर पहुँच कर भाई साहब ने कहा—"श्यामा, दुर्गा या इकबाल, बोलो कहाँ चलते हो?"

"जहन्नुम में।"

"तो, जहन्नुम में ही आओ।"

भाई साहब ने मेरा हाथ पकड़ा और खींचते हुए ऊपर ले गए।

वर्जित प्रदेश

[नरोत्तम प्रसाद नागर]

संसार को सुखी बनाने के लिए लोगों ने अनेक कल्पनाएँ की हैं। सर टामसमूर से लेकर एच॰सी॰ वेल्स तक, अनेक लेखकों ने, सुखी संसार के विचित्र स्वप्न अपने शब्दों में अंकित किए हैं। अपने अनुभव से मनुष्य को सुखी बनाने का मैं ने भी एक उपाय सोचा है। अत्यन्त सरल—न क्रान्ति करने की

आवश्यकता पड़े, न इण्डे खाने की। सहज ही विश्व मे भारी परिवर्तन हो जाए। वह यह कि राज्य की ओर से मुनादी करा दी जाए कि कोई भी पहला लड़का पैदा न कर सके। गर्भ मे आते ही पहली सन्तान किसी प्रकार नष्ट कर देनी चाहिए। यह उन लोगों के लिए है जो आधुनिक सन्तति-निरोध से भय खाते हैं। जो निरोध में विश्वास करते हैं, उनके लिए मार्ग और भी सरल है। विवाहित अथवा अविवाहित जीवन की प्रारम्भिक दशा मे प्रथम पुत्र उत्पन्न करने की गुञ्जायश जरा भी नही रहनी चाहिए। उत्तेजित इन्द्रियों की पहली उष्णता के शान्त होने पर ही योग्य—सच्चे अर्थ में धर्मज-सन्तान उत्पन्न हो सकेगी।

अपने पिता का मैं पहला पुत्र हूँ। इस छोटे-से जीवन मे अनेक पिता के पहले पुत्रों से मै मिल चुका हूँ। सदा ही उन मे एक साम्य का मैं ने अनुभव किया है। अधिकतर उनका चरित्र पिता के विपरीत मुझे मिला है। उन्हें देख कर ऐसा प्रतीत होता है मानों यौवन के विकार, पिता के हृदय को हलका करके, माता के गर्भ में विलीन हो गए हैं। इन्हीं विकारों से जड़ जमती है—पहले पुत्र के विष-वृक्ष की। पिता के बीज-रूप विकार पुत्र मे वृक्ष-तुल्य दिखाई देते हैं। यौवन के उत्ताप के सिवा पिता के पास उस समय और रहता भी क्या है। इसी लिए प्रथम पुत्र का निषेध।

पुत्री का निषेध जान-बूझ कर नहीं किया। प्रथम

पुत्रियाँ संसार के अधिक सुख का कारण होती हैं। यदि किसी वैज्ञानिक प्रक्रिया से यह जाना जा सके कि किस-किस के पहली पुत्री उत्पन्न होगी—तो उससे पहली पुत्री ही उत्पन्न कराई जाए। फिर चाहे वह आजन्म के लिए ब्रह्मचर्य-व्रत ही क्यों न धारण कर ले। पिता की पहली पुत्री जब विषैली नागिन की तरह पुरुष को डसेगी तो वह पानी माँगने योग्य भी न रहेगा। इस मे मुझे जरा भी सन्देह नहीं है। मेरी माँ यदि अपने पिता की पहली पुत्री होती तो उसका इतना शोचनीय अन्त कभी न होता।

माँ की बहुत धुँधली सी याद मेरे हृदय में बनी है। ढाई तीन वर्ष का तब मैं रहा हूँगा। मुझे रात को उनके पास सोने न दिया जाता था। अलग एक पालने मे माँ मुझे दूध पिला कर सुला देती थी। दूध से फूले माँ के गरम स्तनों के पास अपना सिर रख मैं सोने के लिए मचल पड़ता, लेकिन पिता की एक ही डाँट में सीधा हो जाता। मुझे ठीक याद नही, पर अनुमान करता हूँ, पिता ने कभी मुझे दो-चार झापड़ जरूर मारे होंगे। मेरे हृदय में उनका ऐसा भय बस गया था कि दूध आदि न पीने पर उनका नाम लेकर माँ मुझे डराया करती थी। माँ के मुँह से उनका नाम सुनते ही मैं भय से काँपने लगता था।

एक दिन कुछ आवाज सुनकर मैं जाग पड़ा। देखा, माँ किसी बात के लिए पिता को मना कर रही थीं और हाथों से उन्हें पीछे धकेल रही थीं। परन्तु एक बार मुँह से शब्द निकलते

ही पिता ने माँ का मुँह बन्द कर दिया। विरोध मे उठे हुए माँ के हाथ शिथिल पड गये। इसके बाद जो हुआ उसे मैंने कुछ क्षण देखा, परन्तु अकस्मात हृदय मे भय हुआ कि अगर पिता ने देख लिया तो मार पड़ेगी। मैंने चुपचाप आखे बंद कर ली और दम साध कर पड़ रहा।

माँ छरहरे बदन की थी। सुन्दर, सुकुमार, अमीर घर की पली हुई। पिता थे नवजवान, तगड़े बदन के। मुझ पर माँ के व्यक्तित्व की छाप गहरी पड़ी थी। मैंने बोलना बहुत जल्दी सीखा था और तुतलाना बहुत जल्दी छोड़ दिया था। तीसरा बरस बीतते न बीतते मैं साफ साफ बोलने लगा था। दूर से ही फाँद कर माँ को पिता जी की बैठक का सब हाल बता दिया करता था।

दूध पीना मेरा सब छूट गया था। मैंने देखा, माँ धीरे-धीरे रोगी सी होती जा रही है, हर समय वह उदास सी रहती। खाना दिन मे एक बार, वह भी बहुत कम, खाती और पिता जी के सामने रोया करतीं। एक रात को माँ जोर से चिल्ला उठीं। मैं सोते से जाग उठा। मैंने देखा, वह गुड़मुडी सी खाट पर पड़ी थीं। पिता जी खाट के पास हक्के-बक्के से खड़े थे। उनकी घबराहट देख कर मुझे मन ही मन कुछ प्रसन्नता हुई। परन्तु उन्होंने नौकर को बुलाकर शीघ्र ही मुझे दूसरे कमरे में सुला आने को कहा। दूसरे कमरे में मैं कितनी ही देर तक लोगों के आने-जाने की आहट सुनता रहा। फिर मुझे नींद आगई। यह

आखिरी रात थी जब माँ को मैंने देखा था।

तीन चार वर्ष की आयु में ही माँ मुझे छोड़कर चली गई थी। इस बात को बीते एक मुद्दत हो गई, किन्तु अब तक मैं उसे भुला नही सका हूँ। अभी तक एकाएक सोते-सोते माँ की उस चीख को सुनकर जाग पड़ता हूँ। माँ की चीख मेरे हृदय के अन्तरतम प्रदेश में समाकर रह गई है और अवसर पाकर जब-तब प्रकट होती रहती है। पिता के विरोध में उठे हुए माँ के हाथ मेरे जीवन का सन्देश बन कर रह गए हैं। उस समय मैं नहीं समझ सका था कि माँ किस बात के लिए पिता जी को मना करती थी, अपने दुबले-पतले हाथ उठा कर क्यों पिता जी को ढकेलती थी। माँ के उस विरोध का रहस्य अब मेरी समझ में आया है। माँ पिता जी को नही, वरन अपनी मृत्यु के दिन को पीछे ढकेलने का प्रयत्न करती थी।

माँ की मृत्यु के बाद मेरे मामा मुझे आकर लिवा ले गए। पिता से छुट्टी पाने पर मुझे प्रसन्नता हुई। मामा जी उसी शहर के रहने वाले थे। शीघ्र ही मैं उन के घर पहुँच गया। मामी ने दरवाजे पर आकर मुझे अपनी गोदी में उठा लिया और प्यार से कई बार मेरा मुँह चूमा। घर के भीतर एक चटाई पर बिठा कर मेरे आगे कटोरे में बहुत-सी मिठाई रख दी। वह सब मैं थोड़ी देर में खा गया। मामी के इस व्यवहार से मैं उन के बहुत निकट पहुँच गया।

मामी के बच्चे न होते थे, इस लिए उनका स्नेह मुझ पर और

भी अधिक था। उनका बार-बार अपनी छाती से भींच-भींच कर दबाना मुझे अभी तक याद है। इस छोटे-से जीवन में सुख के इने-गिने दिन ही आए हैं। उन में मामी के साथ बिताए वर्ष अलग, एक लम्बी रोशनी में, झलमलाते दिखाई देते हैं। दोनों ओर उनके अन्धकार है और बीच मे वे। दुनिया सब अपनी थी और मैं उसका राजा था। नियंत्रण क्या है यह मैं भूल गया था और स्वेच्छाचार को ही ससार का नियम मान बैठा था। उस स्वर्ग मे कभी-कभी, यमराज की तरह, पिता की मूर्ति दिखाई देती थी, किन्तु..।

मामा मेरे पिता से बहुत असन्तुष्ट थे। उनका बस चलता तो वह कभी पिता का मुँह न देखते और मुझे सदा उनकी छाया से दूर रखने का प्रयत्न करते। मेरी ओर देखते ही मामा को अपनी बहिन—अर्थात मेरी माँ—की याद हो आती थी। मामा के रोष का पारावार नहीं था। पिता को लक्ष्य कर स्पष्ट शब्दों मे वह कहते थे—"मुझे क्या पता था कि हत्यारे के हाथ मैं अपनी बहिन का व्याह कर रहा हूँ। न जाने इस पाप का प्रायश्चित्त करने के लिये कितनी योनियों मे मुझे जन्म लेना पड़ेगा।

"अरे नही, ऐसी बातें नहीं करते," मुझे अपने हृदय से और अधिक सटाती मामी कहतीं—"तुम्हारी जुबान मे तो लगाम नहीं है। जो मन में आता है, कह डालते हो। अगर वह सुन लेंगे तो एक दिन के लिए भी छोटे बाबू को अर्थात मुझे,

यहाँ नहीं छोड़ेंगे।"

"कहने को अब बाकी रहा ही क्या है," मामा कहते—"बहिन जब तक रही, छाती पर पत्थर रख कर सब कुछ देखते रहे। इस डर के मारे कभी कुछ नहीं कहा कि कहीं बहिन को वे और अधिक तंग न करने लगें। लेकिन अब...मैं पूछता हूँ, बहिन के मरते ही उसने जो यह रास-रङ्ग शुरू कर दिया है, वह क्या है। मेरा तो पक्का विश्वास होता जा रहा है कि मेरी बहिन अपनी मौत नहीं मरी, वरन उसे...!

मामी पूरी बात सुनने का साहस नहीं करती थीं। वह सदा इस बात का ध्यान रखती थी कि मामा की बातें मेरे कानों में न पड़ें। एक-दो बार इसमें वह सफल भी हो गईं, लेकिन मामा की अधूरी-पूरी बातों ने मेरे हृदय में एक विचित्र प्रकार की उथल-पुथल मचा दी थी। 'पिता को लेकर भारी आतंक और साथ-ही-साथ प्रबल उत्कण्ठा मेरे हृदय में घर करती जा रही थी।

"मामा जी क्या कह रहे थे आज?" एकान्त मिलने पर मामी के हृदय के निकट खिसकते हुए मैं पूछता।

"कुछ नहीं, पागल हो गए हैं तेरे मामा जी," मामी कहती, "जाने क्या-क्या बकते रहते हैं। उनकी बातें मेरी समझ में भी नहीं आती।"

मामी से जितना ही अधिक मैं अनुरोध करता, उतनी ही अनसमझी वह प्रकट करती। अन्त में मामी की गरदन में अपनी दोनों बाहें डाल कर कहता—"तुम सब जानती हो, मामी। मुझे

तुम नहीं बताओगी तो मैं खुद पिता जी के पास जाकर...!"

"नहीं-नहीं," मुझे अपनी गोदी में खींचकर कसकर भींचते हुए मामी कहती—"तुझे मैं कहीं न जाने दूँगी।"

मामी के हृदय की धड़कन उस समय और भी तेज हो जाती। बड़े मनोयोग से कान लगा कर मामी के हृदय की उस धड़कन को मैं सुनता था। मेरे जीवन के एक से अधिक सुख के क्षण वही होते थे जब मामी आतंकित होकर मुझे अपने हृदय से लगाती थी और मैं जहाँ तक होता था, मामी के हृदय को और अधिक आतंकित करने का प्रयत्न करता था।

मामी की इच्छा तो यही थी कि मुझे अपने पास से कभी कहीं न जाने दे, लेकिन एक दिन अचानक पिता जी आगए। मामा से उनकी खूब कहा-सुनी हुई और अन्त में मुझे वह अपने साथ लेते गए।

× × × ×

अपने पिता को मैंने बड़े होने पर पहचाना। बड़े होने पर क्या, उनकी मृत्यु के बाद ही पहचाना। गलत हो चाहे सही, अपनी बात पर वह जमे रहते थे। 'न' सुनना उनके स्वभाव के विपरीत था। बचपन में ही उनके पिता की मृत्यु हो गई थी। बड़े भाई ने, खुद छोटा बनकर, उनका पालन-पोषण किया। बड़े भाई के सब काम बड़े ही बड़े होते थे। अपने छोटे भाई को, छोटी अवस्था से ही, बड़े बाबू कह कर वह पुकारते थे। शिक्षा-दीक्षा भी उन्हों ने बड़े ढंग से ही की और अन्त में पिता के

व्यक्तित्व को जैसे फिनिशिंग टच देने के लिए, बड़े भाई ने उन्हें विलायत भेजा ।

विलायत में रहकर पिता का स्वभाव और भी स्वच्छन्द हो गया । इच्छा तो उनकी यही थी कि जहाँ तक हो सके अपने विलायत-प्रवास को दीर्घकालीन बनाते जाएँ, लेकिन इसी बीच, एकाएक, हृदय की गति रुक कर बड़े भाई की मृत्यु हो जाने के कारण, उन्हें वापिस लौट कर घर-गृहस्थी को सम्भालना पड़ा । विवाह उनका पहले ही हो गया था । पर विवाह की बात जाने दीजिए । बंधन नाम की वस्तु को वह कभी स्वीकार नहीं करते थे । चाहे वह विवाह का बंधन हो अथवा अन्य किसी प्रकार का ।

विलायत से लौटने पर पिता ने माँ को इस प्रकार देखना शुरू किया, मानो संसार की अन्य लड़कियों की तरह, वह भी एक लड़की हो भूल गए थे कि विवाह नाम की भी कोई वस्तु होती है । विवाह का नाम लेने पर वह इस प्रकार चकित होकर देखने लगते थे मानो वह कुछ समझ न पा रहे हों—अथवा किसी दूसरे लोक की भाषा में उनसे बात की जा रही हो ।

माँ के साथ उनका सम्बन्ध था, लेकिन ऐसा सम्बन्ध तो उनका न जाने कितनी लड़कियों से था । माँ ने यह सब देखा और अन्त में हार कर अपनी आँखें नीची कर ली । निरीह बन-माँ ने पिता को भी निरीह बना दिया । पिता के विरोध में उठ-कर नीचे गिर जाने वाले माँ के दुबले-पतले हाथ मेरे हृदय पर

जैसे सदा के लिए अंकित होकर रह गए हैं। पिता और मृत्यु की काली छाया इन दोनों को, एक-दूसरे से अलग करके देखना मेरे लिए जैसे सम्भव नहीं रहा है। रह रह कर मामा के वे शब्द मेरे कानों मे गूंज उठते है—"मुझे क्या पता था कि हत्यारे के साथ मैं अपनी बहिन का विवाह कर रहा हूँ। न जाने इस पाप का प्रायश्चित करने के लिए कितनी योनियों में मुझे जन्म लेना पड़ेगा!"

आतंकित हृदय मे, आँखों मे आँसू भर कर, पिता के साथ मामी ने मुझे विदा किया। मामी के हृदय की वह धड़कन मुझे अभी तक याद है। मैं उनके हृदय से सट कर खडा था और वह, अपने सम्पूर्ण स्नेह से, मेरे सिर पर हाथ रखे, शून्य की ओर देख रही थी। पिता के साथ चले आने के बाद भी, कई रू, मामी के हृदय की उस धड़कन को, एक विचित्र आनन्द के साथ, मैं सुनता रहा। सच तो यह है कि वह मामी की ही नही, स्वयं मेरे हृदय की भी धडकन थी। मामी की तरह मेरा हृदय भी आशंकित हो उठा था। मुझे प्रतीत हो रहा था कि मैं पिता के नहीं, वरन किसी ऐसे आदमी के साथ जा रहा हूँ जो ?

पिता के साथ घर आने पर मुझे एक बात और मालूम हुई। वह यह कि केवल मैं ही ऐसा नहीं हूँ जिस पर पिता का भय छाया है, वरन् स्वयं पिता पर भी, और किसी का नहीं वरन मेरा, भय सवार है। यह मुझे बाद मे मालूम हुआ। वह मुझ से

अलग-ही-अलग रहते थे। पास आते भी तो इस तरह मानो वह पिता न होकर कुछ और हों। जिस कमरे में मैं रहता था, उसमें माँ का एक बहुत बड़ा, लाइफ-साइज, चित्र लगा हुआ था। माँ के अतिरिक्त कमरे में और भी बहुत से चित्र लगे हुए थे—सभी महान आत्माओं के। अपनी छाया में नहीं, वरन् जैसे इन चित्रों की छाया में पिता मुझे रखना चाहते थे!

एक-एक करके मैं इन सभी चित्रों को देखता और अन्त में माँ के चित्र पर जाकर मेरी आँखें टिक जातीं। मुझे ऐसा प्रतीत होता मानो माँ का यह चित्र दीवार पर टँगे ढेर-सारे महान पुरुषों पर व्यंग की हँसी हँस रहा हो। सहसा मेरे हृदय में एक झटका-सा लगता। मन में होता कि सब भावनाओं को छिन्न-भिन्न कर एक ओर फेंक दूँ और पिता से जाकर कह दूँ—"आप दुनिया भर को धोखा दे सकते हैं, लेकिन मुझे धोखे में नहीं डाल सकते। मैं जानता हूँ कि मेरी रगों में इन महान पुरुषों का नहीं, आपका रक्त दौड़ रहा है। यह एक ऐसा सत्य है जिसे आप....।"

× × × ×

ऐसा प्रतीत होता है मानो अंधकार में रखने के लिए ही परमात्मा ने मेरा निर्माण किया था। पिता की आकस्मिक मृत्यु ने मेरे चारों ओर के अंधकार को और भी घना कर दिया। लेकिन नहीं, पिता की मृत्यु एकदम आकस्मिक ही हुई हो, ऐसा नहीं कहा जा सकता। शायद स्वयं पिता ने यह आदेश दे दिया

कि उनकी बीमारी का हाल मुझ से न बताया जाए। मुझे कुछ भी पता न चलता यदि पिता, अपना अन्तिम समय आने से कुछ पूर्व, मुझे बुलवा न भेजते।

संध्या का समय था। कमरे के वातावरण मे मेरा दम घुट-सा रहा था और मेरा हृदय भी भीतर ही भीतर, छटपटा रहा था। इतनी बेचैनी का अनुभव मैंने पहले कभी नही किया था। तभी पिता का बुलावा आया। मेरे लिए यह एक अनहोनी सी बात थी। लेकिन मैने कुछ कहा नही। झटपट उठा और नौकर के साथ हो लिया। पिता के कमरे मे पहुँचा। संकेत से बुला कर पिता ने मुझे पलंग पर अपने पास बिठाया। कुछ देर तक मेरे मुँह की ओर एकदम देखते रहे। मामी की आँखों मे भी उस समय ठीक ऐसा ही सूनापन-सा था जब कि उन्होंने मुझे पिता के साथ किया था। ऐसा प्रतीत होता था मानो कुछ कहने के लिए वह साहस बटोर रहे हों।

"तुम्हें जब मैं देखता हूँ," आखिर पिता ने कहना शुरू किया—"तो मुझे ऐसा प्रतीत होता है मानो बीते जीवन का पाप मेरी आँखों के सामने आकर मूर्त्त हो उठा हो। सच तो यह है कि तुम्हें सच्चरित्र बनाने के लिए नही, वरन् उस पाप की स्मृति को अपनी आँखों से परे रखने के लिए ही मैं तुम्हें अपने से अलग रखने का प्रयत्न करता था। तुम्हारी माँ...!

पिता का यह अधूरा वाक्य पूरा नहीं हो सका। मृत्यु जैसे इसी क्षण की प्रतीक्षा कर रही थी। अपने अन्त समय में

जिस सत्य को पिता प्रकट करने जा रहे थे, वह शायद इतना भारी था कि उनके गले में अटक कर रह गया और प्रयत्न करने पर भी प्रकट होकर न रहा। सच तो यह है कि मृत्यु ने पिता की रक्षा कर ली। ठीक समय पर आकर मृत्यु ने पिता को उस कष्ट से बचा दिया जिसका सामना करने का साहस वह जीवन-पर्यन्त नही कर सके थे।

मृत्यु ने पिता के भौतिक शरीर का ही अन्त किया था, उनकी आत्मा का नहीं। अत्युक्ति न होगी यदि यह कहा जाए कि पिता का वास्तविक जीवन उनकी मृत्यु के बाद से शुरू होता है। पिता के छोड़े हुए सूत्र को आगे बढ़ाने के लिए मैं जीवित हूँ। निषिद्ध फल के समान मेरे जीवन की वक्रगति को स्थिरता प्रदान करने वाली सोमा जीवित है। पिता ने कभी स्वप्न में भी यह न सोचा होगा कि उनके जीवन का चक्र इस प्रकार पूर्ण होगा। यदि आज वह होते…।

अपनी छाया से अलग रखने का पिता ने जितना ही अधिक प्रयत्न किया, उतना ही अधिक मैं उनके रंग मे रँगता गया। जब तक वह जीवित रहे, बराबर सतर्क बने रहे और उनकी यह सतर्कता अपनी परम परिणति पर पहुँची उनकी वसीयत मे। पैसा पतन के मार्ग मे सहायक हो सकता है, इसलिए उन्होंने मुझे अपनी सम्पत्ति से वञ्चित कर दिया था। उनकी सारी सम्पत्ति की अधिकारणी बनी थी सोमा और एक पहाड़ी पर स्थित उसका नर्सिङ्ग होम।

सोमा का कुछ परिचय मुझे अनायास ही प्राप्त हो गया था। पर उस समय मैं इसकी कल्पना भी न कर सका था कि मेरे जीवन को उदभ्रान्त बनाने मे वह एक निश्चित पार्ट अदा करेगी। पिता की मृत्यु के बाद मेरी मनस्थिति विचित्र हो गई थी। घर जैसे काट खाने को दौड़ता था। अन्त मे तय किया कि कुछ दिन बाहर भ्रमण कर आऊँ। सोचा, पिता जिस पहाड पर गर्मियों मे चले जाते थे, मैं भी क्यों न कुछ दिन वहाँ रह आऊँ।

पिता का कमरा उनकी मृत्यु के बाद से बंद पड़ा था। यात्रा के लिए जरूरी सामान, होल्डाल आदि, लेने के लिए मैंने पिता का कमरा खोला। एकाएक मेरे पॉव, मंत्रवश, पिता के लिखने-पढने की मेज़ की ओर बढ़ गये। मेज के पास एक कुर्सी पडी थी। इसी पर मैं बैठ गया। दोपहर का परिपूर्ण आलोक खिड़की की राह अन्दर कमरे मे बिखर रहा था। सहसा मेरी दृष्टि मनीऑर्डर के एक कूपन पर पड़ी। रुपया पाने वाले की रसीद थी। उठाकर देखने लगा। पाने वाली का नाम लिखा था—सोमा देवी।

सोमा देवी – मन ही मन इस नाम को मैंने कई बार दोहराया और सोचने का प्रयत्न करने लगा कि आखिर वह कौन हो सकती है। सोमा नाम लेते ही मुझे माँ का और पिता के विरोध मे उठे हुए माँ के दुबले-पतले हाथों का ध्यान हो आया। निश्चय ही सोमा उन युवतियों मे से एक होगी जो माँ को पीछे धकेल पिता के जीवन मे अग्रिम स्थान पाने मे समर्थ

हो सकी।

सोमा के प्रति मेरे हृदय में प्रबल उत्कण्ठा ने सिर जमाया। मेज़ की दराज़, अलमारी, सन्दूक, सभी कुछ देखना शुरू किया। पिता की अलमारी मे विदेशों से लाई हुई कई एक बहुमूल्य वस्तुएँ रखी थीं। मैंने एक-एक को उठा कर देखा और फिर पूर्ववत, उन्हें यथास्थान सँभाल कर रख दिया। लेकिन एक ग्रीक प्रतिमा को जैसे ही मैं सहेज कर रखने लगा तो उसके पैरों के नीचे मुझे तीन चिट्ठियाँ मिलीं। काँपते हृदय से मैंने चिट्ठियों को उठाया, इस आशा से कि हो न हो, सोमा की होंगी। पर चिट्ठियाँ सोमा की नहीं, माँ की थीं। पिता ज़ब विलायत में थे, तब माँ ने इन चिट्ठियों को लिखा था। साँस रोक कर मैं पढ़ गया—

दुराचार की भी एक सीमा होती है। देखती हूँ, तुम्हारे बड़े भाई की आँखें अब मुझ पर पड़ी हैं। अब समझ मे आ रहा है कि तुम्हें विदेश भेजने का उनका मतलब क्या था। एकमात्र ईश्वर ही रक्षा करें तो करें, नहीं तो और कोई उपाय नहीं है। सामने ही, कुछ दूर पर, यमुना का जल छलछला रहा है। कहो तो, उसी से डूब मरूं। नहीं तो फिर तुम्ही सोचो कि मैं, तुम्हारी वाक्‌दत्ता, उनके किस काम आ सकती हूँ।

दूसरा पत्र

"सुनती हूँ, तुम ने वहाँ रह कर किसी गोरी लड़की से विवाह कर लिया है। मैंने जब यह सुना तो माथे पर दुःख का

आकाश टूट पड़ा। एक ओर तुम्हारा यह हाल है और दूसरी ओर बड़े भाई अपने डोरे डालने मे लगे हैं। पता नहीं विधाता ने मेरे साथ यह कैसी खिलवाड़ शुरू की है और इस का अन्त क्या होगा। मैं जब कभी कुछ सोचने लगती हूँ तो आँखों के सामने अन्धकार के सिवा और कुछ सुझाई नही देता। एक तुम्हारा ही भरोसा है, लेकिन तुम. ...।"

तीसरा पत्र

"एक दुःखदायी खबर सुन लो। तुम्हारे बड़े भाई अचानक हार्टफेल होकर स्वर्गधाम सिधार गए हैं। घर पर अब कोई नहीं है। नौकर-चाकरों के हाथ मे सब कुछ मटियामेट हुआ जा रहा है। अपनी नयी बीवी से कहना, अभी भी वह तुम्हें यहाँ न आने दे तो अकेली मैं ही भिखारिन नहीं बनूँगी, साथ ही साथ वह भी बनेगी।"

माँ के इन पत्रों को पढ़ कर मेरा हृदय कसक उठा। वेदना के इतिहास की रचना करने के लिए ही माँ ने जैसे जन्म लिया था। पिता विलायत से लौट आए, पर माँ की वेदना का अन्त नही हुआ। मानसिक सन्ताप ने माँ को एक दम खोखला कर दिया था।

माँ की वेदना की साक्षी देने वाले इन पत्रो को, अगले ही क्षण, मैंने टुकड़े-टुकड़े कर खिड़की की राह बाहर फेंक दिया। इस के बाद, अनायास ही मुझे उस गोरी युवती की याद हो आई जिस का माँ ने अपने पत्र में ज़िक्र किया था। वह अब

कहाँ होगी। पिता के साथ क्या वह भी यहाँ चली आई थी। कौन जाने, पिता अपने चारों ओर इतना अंधकार छोड़ गए हैं कि कुछ सुझाई नहीं पड़ता।

लेकिन सोमा ...?"

मैंने मनी आर्डर की रसीद उठाई और सोमा की खोज का निश्चय कर घर से चल पड़ा। एक सोमा ही अब ऐसी रह गई थी जिस के सहारे मैं अपने अतीत के छिन्न-भिन्न सूत्रों को एकत्र कर आगे बढ़ने का प्रयत्न कर सकता था।

× × ×

रास्ते भर एक विचित्र प्रकार के आनन्द तथा उत्सुकता में डूबता-उतराता जब मैं सोमा के नर्सिंग होम के द्वार पर पहुँचा तब संध्या हो चुकी थी। अपना सम्पूर्ण प्रकाश समेट कर सूर्य देवता अन्धकार के आवरण में मुँह छिपाने की तैयारी कर रहे थे। मुझे ऐसा प्रतीत हो रहा था मानो मैं किसी ऐसे लोक में पहुँच गया हूँ जहाँ सूर्य देवता को भी अधिक देर तक टिकने का साहस नहीं होता। विधाता का सम्पूर्ण विधान जैसे इस लोक को अन्धकार के आवरण में छिपा कर रखने के लिए कटिबद्ध हो गया है।

इस प्रकार के अनेक भावों में उलझा, अस्त-व्यस्त सा, अपने चारों ओर के वातावरण से परिचित होने का प्रयत्न कर रहा था। तभी शुभ्रवेशा महिला मूर्तिमती संध्या-सी मानो आकाश से उतर कर आगे बढ़ आई और अभिवादन करते

हुए बोली—"चलिए, अन्दर चल कर पहले नाम लिखाना होता है···।"

मेरी भावनाओं को जैसे एक झटका-सा लगा। इस प्रकार के निर्देश के लिये मैं तैयार नहीं था। मुझे कुछ सट-पटाया सा देख वह आप ही आप कह चली—"घबड़ाइये नहीं सब प्रबन्ध हो जाएगा। यह एक ऐसा प्रदेश है जिस का नाता बाहरी जगत से नहीं है। आप कतई चिन्ता न करें। यहाँ उन पुरुषों को बिलकुल मुक्त कर दिया जाता है जो इनके नायक होते हैं। भूल-चूक तो सभी के जीवन के साथ लगी रहती है। माता जी ने इसी लिये क्षमा का आश्रय लिया है।"

सहसा मेरी आँखों के सामने पिता की मूर्ति घूम गई। साथ ही साथ पिता के विरोध मे उठे हुए माँ के दुबले पतले हाथो का भी ध्यान आया और फिर, दूसरे ही क्षण, एक दृश्य एकाकार हो गया। मेरे कानों मे कुछ क्षण तक यही शब्द गूञ्जते रहे—"भूल-चूक तो सभी के जीवन के साथ लगी रहती है। इसी लिए माता जी ने क्षमा का 'आश्रय' लिया है।"

"भूल-चूक ' क्षमा का आश्रय!" मैंने मन ही मन दोहराया—"मैं स्वय भी तो किसी ऐसी ही एक भूल का परिणाम हूँ। पिता अगर ऐसी भूल न करते तो मैं कहाँ से होता, यह सस्था कैसे जन्म लेती और माता जी को, क्षमा का दामन पकड़ कर, इस प्रकार ऊँचा उठने की सुविधा कैसे प्राप्त होती!"

शब्द गले तक आए और वहीं उलझ कर रह गए। मैं कुछ कह नहीं सका, किन्तु मेरे पाँव, अनायास ही यंत्रवत उसके साथ-साथ आगे बढ़ चले।

चलते-चलते वह बोली—"अच्छा तो वार्ड में भरती कराने के लिए 'उन्हें' कब तक ला रहे हैं। 'उन्हें' से मेरा मतलब है—कोई बाल-विधवा, कोई कुँआरी कन्या या...!"

अंधकार की काली छाया घनी होती जा रही थी। मैं अनुभव कर रहा था कि यदि अपने को तुरत संभाल न लिया तो इस काली छाया से भिन्न. मेरा कोई अस्तित्व नहीं रह जाएगा। अपनी सारी शक्ति को बटोर कर मैंने कहा—"आप ग़लती पर हैं सिस्टर! मैं कोई असद् उद्देश्य लेकर यहाँ नही आया हूँ। सोमा देवी मेरी रिश्तेदार होती हैं। उन्हे ज़रा खबर कर दीजिए, बस!"

"ओह", सिस्टर ने चौंक कर कहा। फिर हम दोनों उसी गेट पर आकर खड़े हो गए।

वह बोली—"सामने जो सफेद बंगला दीख रहा है, वही माता जी का निवास स्थान है। अपनी लड़की सोमा देवी के साथ वह इसी में रहती हैं।"

एकाएक किसी महिला के सामने जाने का मुझे साहस नहीं हो रहा था। सिस्टर की तरह यदि उस ने भी इसी तरह की बातें करनी शुरू कर दीं तो...!

"संस्था का परिचालक कौन है—कोई मैनेजर आदि...?"

कुछ खिसियाते हुए मैंने पूछा।

सिस्टर बोली—"परिचालक कहिए या मैनेजर, सब काम सोमा देवी ही देखती है। सिर्फ बैंक का काम देखने के लिए सेक्रेटरी देसाई हैं।"

मैं अपना हैंडबैग उठा कर चल पड़ा। अँधेरा काफी हो गया था। जैसे-जैसे मैं निकट होता गया, सफेद दूध-सा बंगला जैसे जैसे मेरी दृष्टि के सामने स्पष्ट दीखता गया, मेरे हृदय की धड़कन भी उसी अनुपात में तेज़ होती गई। जी मे हुआ कि भाग जाऊँ, सोमा से बिना मिले भी जीवन चल सकता है, लेकिन...!

मैं आगे बढ़ता ही गया और एक चीड़ के वृक्ष के नीचे जाकर खड़ा हो गया। माता जी के बंगले का द्वार आ गया था। कुछ तिरछे से दालान के छोर पर, आराम कुर्सी पर अधमरी, एक महिला भी दीख पड़ी। मेरे पाँव की आहट पा वह लेटे ही-लेटे बोली—"अरे मंगल, देख तो कौन है?"

लेकिन मंगल का कुछ पता नहीं था। वह नहीं आया। मैं ही साहस कर आगे बढ़ा। बोला—"नमस्कार।"

अस्त-व्यस्त महिला कुर्सी पर सीधी बैठ कर बोली—नर्सिंग होम तो आप उधर छोड़ आए। खैर, बैठिए। कुछ कहना हो तो कहिए।"

फिर उन्होंने मगल को पुकारा—"अरे, एक लालटेन तो ले आ भले आदमी।"

बरामदे में और भी कुर्सियाँ पड़ी थीं। एक पर अपना बैग रख दूसरी पर धप्प से बैठ गया। फिर एक लम्बी साँस लेकर बोला—"रात काटने के लिए यहाँ कोई दूसरा इन्तज़ाम नहीं है?"

"नहीं, यहाँ पुरुषों का काम भरती कराने भर का रहता है। बस, आए और गए। प्रसव के बाद जिन को यहाँ रहना नहीं होता, वे अपने-आप चली जाती है।"

इतने में मंगल लालटेन लेकर आगया। उसके प्रकाश मे चौंक कर मैंने जो मुँह ऊपर उठाया तो देखा, महिला आपाद-मस्तक, अनिमेष दृष्टि से, मेरी ओर देख रही है। मैं उस स्थिर दृष्टि को बरदाश्त नहीं कर सका। किसी अज्ञात भय से मेरी दृष्टि अपने-आप नीचे को झुक गई।

महिला उठ कर खड़ी होगई। फिर मंगल से बोली—"मंगल, लालटेन लेकर इन्हें होम तक पहुँचा देना, अच्छा?"

यह 'अच्छा' मेरे लिए था, मैं समझा। महिला अन्दर जा रही है, यह भी मैं समझा। लेकिन मेरा गला रूँध-सा गया था। इच्छा होने पर भी मैं कुछ कह न सका।

मंगल लालटेन उठाकर बोला—"चलिए साब!"

प्रयत्न करने पर भी मैं महिला के सामने मुँह न खोल सका था। किन्तु मंगल का स्वर सुनकर मेरी खोई हुई वाक् शक्ति जैसे फिर से लौट आई। मैं बोला—"लेकिन मैं तो सोमा देवी से मिलने आया हूँ, मंगल।

"अच्छा तो बैठिए साहब," कह कर मंगल चला गया। वह महिला भी छाया-सी बॅगले के भीतर लुप्त होगई थी। अब दालान में केवल मैं था और मेरी अस्त-व्यस्त भावनाएँ। शंका, घृणा, लज्जा और रोमांच से भरा मैं वही एक बात सोच रहा था जिसे प्रकट करने-का साहस मे कभी नहीं कर सका। सिस्टर का प्रथम संभाषण अभी तक मेरे कानों में गूंज रहा था। प्रत्येक आगन्तुक केवल वही एक उद्देश्य लेकर आता है, यह कहने पूछने में तनिक भी हिचकिचाहट नहीं होती।

चर-चर चप्पलों की आवाज सुन कर मे सचेत हो गया। सत्रह-अठारह साल की एक युवती सामने आई और नमस्कार करने के बाद बोली—"मैं सुनती हूँ, आप मुझ से मिलना चाहते हैं।"

"हाँ," मैंने कहा—"तुम से मिलने के लिए मैं राज नगर से आया हूँ।"

"राज नगर.....!"

युवती अब सन्न-सी होकर कुर्सी पर बैठ गई। लालटेन का प्रकाश उस के मुख पर पड़ रहा था। मुझे ऐसा प्रतीत हुआ मानो पिता की मूर्ति, हूबहू, मृत्यु के बाद नारी बनकर, मेरे सामने आकर बैठ गई है।

परिपूर्ण आवेग से मैं कह उठा—"मेरी हार्दिक आकांक्षा है कि मेरे सामने जो बैठी है, वह मेरी बहिन हो। सोमा, क्या म यह सम्बन्ध अस्वीकार कर सकती हो ? क्या तुम यह

कहोगी कि मेरी बहिन नहीं हो ?"

सोमा पत्थर की प्रतिमा की तरह निश्चल, बिना कुछ करे, बैठी रही। उसे इस प्रकार कुछ न करते देख मेरा हृदय क्षुब्ध हो उठा। मेरे मुँह से निकला—"पिता ने मेरे साथ बहुत अन्याय किया है। तुम सब लोगों के रहते उन्होंने मुझे इस तरह पाला मानो इस संसार में मेरा और कोई न हो। और तो और, उन्होंने यह तक नहीं अनुभव होने दिया कि मैं उन का पुत्र हूँ। अपने से अलग रख कर, महान पुरुषों के चित्रों की छाया में, उन्हों ने मुझे भूत-प्रेतों की तरह जीवन बिताने को मजबूर किया। पता नहीं, तुम्हें ऐसा क्या भय था जो......!"

सोमा की मुख-मुद्रा मे कोई परिवर्तन नही हुआ। वह उसी प्रकार, जड़वत, बैठी रही। मेरे शब्द उस के कानों तक पहुँच कर पहले ही मानो शून्य में खोए जा रहे थे। अन्त में खीज कर मैंने कहा—"मरने के बाद पिता एक ऐसी काली छाया छोड़ गये हैं जिस से छुटकारा पाने के लिए मेरा हृदय हर घड़ी धड़कता रहता है। तुम्हें देख कर मेरे हृदय में क्षीण आशा जाग्रत हुई थी कि तुम्हें पाकर उस काली छाया को मैं प्रकाश से भर सकूँगा ?"

सोमा के शरीर ने कुछ हरकत की, ऐसा प्रतीत हुआ मानो उस के ओंठ अब खुलने जा रहे हैं, लेकिन उस ने कुछ कहा नहीं। एक क्षण के लिए अस्थिर होकर वह फिर, पूर्ववत, स्थिर हो गई।

"लेकिन तुम चुप क्यों हो," सोमा की स्थिरता को एक बारगी भंग करने के लिए मैंने कहा—"क्या तुम यह कहना चाहती हो कि मेरी बहिन नहीं हो ?"

सोमा ने अपनी आँखों पर अब अंचल दबा दिया था। रूद्ध से स्वर में सिर हिला कर बोली—"नहीं, मैं आप की बहिन नहीं हूँ...मैं किसी की कोई नहीं हूँ...केवल इतना जानती हूँ कि मैं सोमा हूँ।"

सोमा के यह शब्द सुन कर मैं स्तब्ध रह गया। तभी मैंने अनुभव किया कि अंचल की ओट में मुँह छिपाए सोमा सिसक सिसक कर वह रो रही है। मुझे यह समझने में देर न लगी कि पिता के जीवन का सम्पूर्ण रहस्य, मौन और क्षमा का आश्रय लिए, सोमा के रूप में सिसक-सिसक कर रो रहा है। इसे अब उघाड़ कर क्या होगा, इसे अब देख कर क्या होगा।

"अच्छा तो मैं अब चलता हूँ।" अस्फुट से स्वर में मैंने कहा और हृदय पर पत्थर-सा रखे चला आया।

× × ×

मैं अब उत्सुक हूँ—हर तरह से उत्सुक। वर्जित प्रदेश नाम की वस्तु का अब मेरे लिए कोई अस्तित्व नहीं रहा है। संसार मे न मेरा कोई है और न ही मैं किसी का हूँ। सोमा से फिर मेरी भेंट हुई—एक दो बार नहीं वरन् अनेक बार—किन्तु दूसरे रूप में।

दूसरी बार जब सोमा से मिला तब मैं अकेला नहीं था।

मेरे साथ एक युवती भी थी। सच तो यह है कि उस युवती को भरती कराने के लिए ही मैं वहाँ गया था। मेरे प्रति सोमा का व्यवहार इस बार भी, पहले की तरह ही, निस्संग रहा। किन्तु उस युवती के प्रति सोमा के हृदय की सम्पूर्ण वेदना उमड आ। सोमा और उस युवती को एक साथ देखकर ऐसा प्रतीत होता था मानो जन्म-जन्मान्तर से दोनों एक साथ रहती आई हों।

उस युवती को सोमा ने तुरन्त अपने हृदय से लगा लिया। उस समय सोमा के मुख पर एक ऐसी दैवी आभा खेल रही थी कि मैं एक टक देखता रह गया। उस आभा को देख कर मुझे आन्तरिक सन्तोप प्राप्त हुआ—ऐसा सन्तोष जिसका मोह मैं कभी न छोड़ सका, जिसे पाने के लिये मैंने अनेक युवतियों के साथ क्षणिक सम्बन्ध स्थापित किया और……।

मुझे जन्म देकर पिता ने जिस जीवन-चक्र का सूत्रपात किया था, सोमा को पाकर वह पूर्ण हो गया। जीवन की इस गति पर अकेले में बैठ कर जब कभी मैं सोचता था तो एक विचित्र प्रकार का रस मुझे प्राप्त होता था। सोमा की कल्पना इस रस में और भी तीखापन ला देती थी। सातवीं बार एक युवती को लेकर जब मैं नर्सिंग होम गया तो मुझ से न रहा गया। सोमा के हृदय के अन्तिम प्रदेश की थाह लेने के लिए मैंने कहा—"सोमा, तुम्हारी वजह से ही मुझे इस पथ का

पथिक होना पड़ा है। तुम से मिलने का जैसे यही एक तरीका मेरे पास रह गया है। यदि तुम.. !"

"मैं सब जानती हूँ," सोमा ने बीच में ही बात काटकर कहा—"सब कुछ जानबूझ कर भी न मैं यह जगह छोड़ना चाहती हूँ, न तुम्हारे साथ चल कर घर पर ही रहना चाहती हूँ। तुम जो कुछ कर रहे हो, उसे भी मैं बुरा नहीं समझती। मैं तो उस दिन की प्रतीक्षा कर रही हूँ जब यह सम्पूर्ण देश ही इस संस्था के अनुरूप हो जाएगा।"

"इसका मतलब ?" मैं ने कहा।

"मतलब यह कि जब नारी के जीवन में पुरुष का उपयोग आज की तरह स्थायी—जन्म-जन्मान्तर तक चलने वाला न रहकर क्षणिक हो जाएगा। पुरुष जाति के ध्वंसावशेष पर ही नवयुग का निर्माण होगा। मुझे पूरा विश्वास है कि..."

"पुरुष-जाति का ध्वंसावशेष।" मन-ही-मन मैंने दोहराया और उल्टे-सीधे भावों से मेरा हृदय भर उठा। कुछ रुक कर फिर मैंने कहा—"हाँ, सोमा, संसार को सुखी बनाने की जो कल्पना मैं कभी-कभी करता हूँ, वह भी ऐसी ही है। राज्य की ओर से मुनादी करा देनी चाहिए कि पहला लड़का कोई भी उत्पन्न न कर सके। पहले लड़के के स्थान पर यदि लड़कियाँ..."

"देखिए, पुरुषों के लिए यहाँ अधिक देर तक टिकने का विधान नहीं है," बीच में ही बात काट कर सोमा ने कहा—"आप का काम होगया। अब जाइये।"

यह कह कर सोमा तेज़ी से चली गई। कुछ देर मैं खोया-सा खड़ा रहा। फिर सोमा से शीघ्र ही मिलने की आशा हृदय में लिए लौट आया—जीवन के वक्रपथ पर वक्र गति से आगे बढ़ने के लिए।